ऐसी करनी कर चलो......

(सद्‌गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी महाराज)
1903 - 1954

संगत समतावाद

संगत समतावाद (पं०) 1991

प्रथम संस्करण ... 1100
वर्ष ... 2003
द्वितीय संस्करण ... 1100
वर्ष ... 2005

प्रकाशक
संगत समतावाद
समता योगाश्रम, छछरौली रोड,
जगाधरी–135003

मुद्रक :
राजेश प्रिंटिंग प्रैस
आराम नगर, पहाड़ गंज,
नई दिल्ली–110055

कथनी से कुछ न सरे, तन मन दीजो वार।

'मंगत' करनी सार है, जो करे सो उतरे पार॥

दुनियाँ में सच्चा मित्र कौन है?

अपने नेक कर्म

दुनियाँ में हमेशा खुश कौन रहता है?

जो दूसरे का भला चाहता है

मानुष ज़िन्दगी की सार क्या है?

सत् स्वरूप (ईश्वर) की तलाश

प्रस्तावना

क्यों इस पुस्तक को देखें? – बाज़ार में आध्यात्मिक विचारों पर साहित्य और आज के युग के हर प्रकार के गुरुओं की जीवनी और उनके दृष्टिकोंण उपलब्ध हैं। परंतु यह वृतांत और विचार ऐसे सत्पुरुष के हैं जिनका पूरा जीवन ही एक चमत्कारी घटना थी, क्योंकि जिसे न तो भूख सताती हो, न प्यास; जिसे न थकावट महसूस होती हो, न बेचैनी; हानि और लाभ, दुःख और सुख, मान व अपमान, ज़िन्दगी और मौत, मित्र और शत्रु, सगे और पराये जिसकी दृष्टि में एक समान हों; जिसका बचपन कठिन तप और त्याग, सेवा और परउपकार में गुज़रा हो और जिन्होंने जवानी के आने से पहले ही योग साधना और तपोबल द्वारा विषय विकारों को दग्ध करके रख दिया हो; यही नहीं बल्कि मोहनी माया भी जिसके ब्रह्मचर्य के बल के आगे निर्बल हो चुकी हो और जो शरीर धारण करके भी शरीर की मांग से मुक्त और मान मर्यादा से निर्मल रहा हो और जिसे जड़ और चेतन सभी जीव स्वरूप नज़र आते हों और फिर जिसकी सुरति और सोच, साधना और तप सब केवल एक परमेश्वर पर ही केन्द्रित हों, ऐसी अनोखी हस्ती का जीवन और विचार हर साधक और पढ़ने वाले को ज़रूर प्रभावित करेंगे। हमें इनके अटूट प्रेम, प्रबल संयम, कड़े अनुशासन, निर्मानता, निष्कामता, शील, सन्तोष इत्यादि गुणों से सुशोभित जीवन से प्रेरणा लेनी है और अपने निजी, पारिवारिक और सामाजिक जीवन में अपनाकर अपने आध्यात्मिक जीवन में लाभ उठाना है।

प्रकाशक

विषय सूची

1. वार्तालाप
   - (क) धर्म ग्रन्थों पर 1
   - (ख) ईश्वर तथा मानव विज्ञान 8
   - (ग) धर्म मार्ग 15
   - (घ) गुरुदेव संबंधी 32
2. गुरुदेव का जीवन परिचय एवं संस्मरण 38
3. गुरुदेव का एक प्रवचन तथा पत्र 57
4. चेतावनी 64
5. धर्म का यथार्थ स्वरूप और प्रचलित धारणाएं 65
   - (क) तीर्थ यात्रा का सिद्धान्त 67
   - (ख) मूर्ति पूजा का सिद्धान्त 68
   - (ग) देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त 69
   - (घ) दान का सिद्धान्त 71
6. आध्यात्मिक उन्नति के मुख्य साधन 73
   - (क) सादगी 75
   - (ख) सत्य 76
   - (ग) सेवा 77
   - (घ) सत्संग 78
   - (ड.) सत् सिमरण 80
7. गुरु कौन? 82
8. गुरु वाणी - समता प्रकाश ग्रंथ से 84
9. अंतिम सन्देश 89
10. समतावाद 91

धर्म ग्रन्थों पर वार्तालाप

प्रश्न 1 : महाराज जी, महर्षि व्यासदेव की रची हुई भगवद्गीता नाम की पुस्तक है, उसमें श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को जो ज्ञान दिया है उसके बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी जी, शरीर और आत्मा के विज्ञान को संक्षेप में अच्छी तरह से समझाने वाला यह एक अनुपम ग्रंथ है।

प्रश्न 2 : महाराज जी, भगवान कृष्ण ने अर्जुन को महाभारत के समय, जब युद्ध के लिए दोनों ओर सेनाएं खड़ी थीं, इतना लम्बा उपदेश गीता का किया होगा, समझ नहीं आता।

उत्तर : प्रेमी, आप ठीक कहते हैं। इतना समय नहीं था और न ही इतना लम्बा उपदेश कृष्ण ने दिया था बल्कि उन्होंने थोड़े शब्दों में अर्जुन के संशय और भ्रम को निवृत्त किया था। इसके पश्चात् व्यास ने उस तत्व ज्ञान के आधार से गीता विस्तार से लिखी।

प्रश्न 3 : महाराज जी, गीता में भगवान कृष्ण फरमाते हैं कि जो जीव अन्तिम समय 'ओम्' अक्षर का अभ्यास करते हुए प्राण त्यागता है, वह मुझे प्राप्त होता है। यदि ऐसा है तो जीवन भर अभ्यास करने से क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, कृष्ण का भाव 'ओम्' अक्षर से 'शब्द' की अनुभवता है और यदि शब्द की अनुभवता और स्थिति प्राप्त न होवे तो अन्तिम समय अभ्यास का होना कठिन है।

प्रश्न 4 : भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, 'हे अर्जुन, जो मुझे प्रेम से पत्र, पुष्प भी भेंट करता है मैं उसे स्वीकार करता हूं।' इसका क्या भाव है?

उत्तर : प्रेमी, कृष्ण का भाव यहाँ यह है कि जो थोड़ी श्रद्धा भी रखता है वह उस परम तत्व की प्राप्ति में उन्नति करता है।

प्रश्न 5 : महाराज जी, दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप वर्णन किया है और उसकी जो लीला बयान की है, उसके बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर : प्रेमी जी, पुरातन काल में यह एक वर्णन करने का ढंग था जो कि बाद में स्वार्थी लोगों ने अपने तसव्वर (कल्पना) घड़कर अपनी पेट पूजा का धन्धा बना लिया। दुर्गा भागवत् में दुर्गा का जो रूप शेर की सवारी का बतलाया गया है और दुर्गा के जितने हाथ दिखाये गये हैं उसका अर्थ यह है कि अंहकार रूपी शेर पर जो सवारी करता है वह असंख्य हाथों से ऊपर उठाया जाता है और असंख्य हाथ उसका हर कार्य करने को तैयार रहते हैं।

प्रश्न 6 : महाराज जी, कृष्ण जी ने अपने आप को खुदा (ईश्वर) करके संबोधन किया है। बार-बार ऐसा कहकर अर्जुन को समझाते रहे हैं?

उत्तर : प्रेमी जी, श्री कृष्ण ने अपने जिस्म को खुदा नहीं कहा। उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप को हर समय समझा हुआ था। इस प्रकार ठोक बजाकर किसी सत् पुरुष ने अपने आप को ब्रह्म स्वरूप नहीं कहा है। बार-बार आत्मा की तरफ उनका इशारा हुआ करता था। कृष्ण की स्थिति को कृष्ण बनकर ही जाना जा सकता है। आप संसारी जीव इनके गुप्त ज्ञान को नहीं समझ सकते हैं। वह परम राजयोगी थे। इन नाचने वाले रास धारियों ने उन्हें और रूप दे रखा है। उनके वास्तविक ज्ञान की तरफ जाओ। ऐसा ज्ञान इस संसार में कोई गृहस्थी जीव तीन काल नहीं दे सकता है।

प्रश्न 7 : महाराज जी, शास्त्रों में गंगा मइया की बड़ी महिमा है। कृपा करके इसके बारे में समझाने की कृपा करें?

उत्तर : पुरातन ऋषियों ने जिस बात का बयान किया है वह खत्म हो गई। अब पेट के स्वार्थी लोगों ने मन गढ़त कहानियाँ घड़-घड़ के अपना धंधा बना रखा है। लो सुनो, कपाल रूपी आकाश से उतरकर सुषमना नाड़ी के द्वारा सारे शरीर को प्रकाश करने वाली शक्ति को ज्ञान

रूपी बुद्धि (भगीरथ स्वरूप) जब अनुभव करती है तब वासना रूपी तपन शान्त होकर अविनाशी शब्द को प्राप्त हो जाती है। यह ही आत्म शब्द की धारा गंगा का स्वरूप है। इसमें स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती है। कर सकते हो तो करो।

प्रश्न 8 : महाराज जी, राक्षसों ने और देवताओं ने समुद्र मन्थन करके रत्न निकाले थे। इस बारे में आपका क्या ख्याल है?

उत्तर : प्रेमी, यह भी वही बात है। पेट रूपी समुद्र को प्राण अपान रूपी मथानी से मथकर ज्ञान रूपी रत्न निकालते हैं। मनुष्य के अन्दर देवमई और आसुरी दोनों प्रकार की वृत्तियां हैं उन्हीं के द्वारा यह समुद्र मथा जाता है।

प्रश्न 9 : पहले ज़माने में गोमेध और अश्वमेध यज्ञ हर इन्सान कर लेता था और उसकी बड़ी महिमा शास्त्रों में बयान की गई है। यह कैसे सम्भव हो सकता है? राजा के सिवाय गोमेध और अश्वमेध यज्ञ दूसरा कौन कर सकता है?

उत्तर : प्रेमी, सब पाखण्ड है। ऋषियों का जो असल भाव था उसके अर्थ का अनर्थ किया जा रहा है। यज्ञ के अर्थ त्याग के हैं। गोमेध यज्ञ के असली अर्थ हैं विषयों का त्याग अर्थात् इन्द्रियों का दमन करना और अश्वमेध यज्ञ के अर्थ हैं प्राणों का दमन (नियमन) करना।

प्रश्न 10 : वेदों में तो हवन, यज्ञ पूजन को बड़ा महत्व दिया गया है। अश्वमेध यज्ञ इत्यादि के साथ बड़ी घटनाओं का ज़िकर आया है। आपकी इस बारे में क्या राय है?

उत्तर : हवन कुंड तो तेरी नाभी में मौजूद है। आहुति डालनी है तो अपने प्राणों की डाल। जब तक तेरी सुरति बाहरमुखी होकर माया को अन्दर उड़ेल रही है, यज्ञ पूजन का सवाल ही नहीं उठता। यही सुरति जो प्राणों पर सवार होकर अन्दर बाहर आ जा रही है, जब अन्तर्मुखी होगी तब तेरा हवन कुण्ड शुद्ध होगा। और तब तू सोध कुण्ड के पास जाकर प्राणों की आहुति डालने के काबिल होगा।

रहा सवाल अश्वमेध यज्ञ का, यह तेरा विकराल मन ही खुला हुआ घोड़ा है। जिधर जाता है बाहर के आकर्षण इसे पकड़ लेते हैं। जब यह तेरे काबू में आ जाएगा तब तेरा अश्वमेध यज्ञ पूरा होगा। पुरातन किस्से कहानियों को छोड़कर प्रण करके मन और प्राणों की रक्षा करो, ताकि सुरति (बुद्धि) अन्तर्मुखी हो और हरि सिमरण द्वारा निज थाओं (मंज़िल) में वास कर सके।

प्रश्न 11 : महाराज जी, शास्त्रों में जो विष्णु दूत और यमदूत का वर्णन आता है, कृपया इसके बारे में कुछ रोशनी डालें?

उत्तर : लाल जी, पुरातन शास्त्रों में उपमा और तशरीह (व्याख्या) देकर अध्यात्म विद्या का बयान किया गया है। तेरी देव वृत्तियाँ ही विष्णु दूत हैं और आसुरी वृत्तियाँ ही यमदूत हैं।

प्रश्न 12 : योग वशिष्ठ में दिया हुआ है कि वशिष्ठ जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि फलाँ-फलाँ समय में कृष्ण का अवतार होगा, जो गीता का उपदेश प्रगट करेंगे। क्या महापुरुष ऐसी भविष्य वाणियाँ कर दिया करते हैं?

उत्तर : इस पर गौर करने से मालूम होता है कि यह रोचक विचार हैं और बाद में दरज किये गये हैं। क्योंकि आत्मदर्शी पुरुष हर एक देश में हुए हैं, जैसे कि ईसा, मूसा, इब्राहिम, मुहम्मद, बुद्ध, महावीर वगैरा, और भी कई हैं और होवेंगे, इनके बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की गई है। क्या उन्होंने थोड़ी कुरबानी पेश की है? क्या आत्म सत्ता का विषय भारतवर्ष में ही अनुभव किया गया है? और देशों में जो आत्मदर्शी हुए हैं उनके बारे में कोई विचार नहीं है? यह सिर्फ बाद के आचार्यों ने राम और कृष्ण के तईं श्रद्धा बढ़ाने के वास्ते लिख दिया है। आत्म ज्ञान में न कोई देश है, न काल है और न कोई और स्थूल प्रकृति का भास है। वह सत्ता निराकार स्वरूप सर्वज्ञ है। उसमें न कुछ हुआ, न कुछ होगा। यह स्थूल प्रकृति केवल तीन गुणों का अचम्भा है। आत्मदर्शी पुरुष उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहते हैं। गुणों में गुण बरतते हुए अनन्त प्रकार की सृष्टि का

स्वरूप उदय और अस्त होता रहता है। उसके बारे में यथार्थ और पूर्ण रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सिर्फ गुणों के चक्कर का अन्दाजा लगाकर ही कोई कुछ कहे तो कह सकता है।

प्रश्न 13 : महाराज जी, धर्म शास्त्रों में कहा है कि योग भ्रष्ट ज्ञानी श्रीमान कुल में जन्म लेता है। श्रीमान कुल में जन्म लेकर योग भ्रष्ट ज्ञानी पुरुष को वहां का संग दोष क्यों नहीं होता? ज्ञानी कुल किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, श्रीमान कुल में जन्म लेकर योगभ्रष्ट पुरुष अपने पुरातन संस्कारों की बलवानता के कारण उनके ऐश्वर्य में अर्थात् नुमायश दिखावे में भूलता नहीं और न ही उसमें ग्रस्त होता है, बल्कि उसके उल्ट उनमें उपरामता, उदासीनता धारण कर लेता है। इसी प्रकार कई जगह बहुत से महापुरुष हुए हैं-राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर इत्यादि। सब इसी दर्जे के सत्पुरुष थे। यह सब राजगृह में जन्म लेकर भी पूर्ण ज्ञानी बने।

ज्ञानीकुल उसे कहते हैं जहां धन, सम्पत्ति, रुपया-पैसा तो अधिक नहीं होता परन्तु परिवार धर्म-कर्म में तथा नेक और सदाचारी सीरत में पूर्ण होता है। इनमें जो लोग होते हैं, वे उच्च आदर्श और सदाचार में पूरे होते हैं। ऐसे परिवार में योगभ्रष्ट पुरुष पैदा होकर अपने साधन में आगे बढ़ता है, और उसे सत् साधन का माहौल प्राप्त होता है।

प्रश्न 14 : महाराज जी, आप नशीली चीजों के इस्तेमाल को मना करते हैं। शिवजी भी भंग पीते थे। आजकल की गुरु परंपरा में भी इस बात की मनाही नहीं है। फिर आप हमको इसके प्रयोग से क्यों मना करते हैं?

उत्तर : ख्वामख्वाह (अकारण) शिवजी और सत्पुरुषों का नाम लेकर बुद्धि को लोग भ्रष्ट कर रहे हैं। क्या कोई उनको देख रहा था कि शिवजी महाराज भंग और चरस पी रहे हैं? वह तो नित्य ही नाम की खुमारी में मस्त रहते थे। आजकल चण्डू, गांजा, भंग पीकर मस्त रहने वाले अपना भी विनाश करते हैं और कई साधारण जीवों को भी खराब करते हैं। ऐसे

गुरु जो शिष्यों को नशे की आदत में डालने वाले हैं उनके निकट तक नहीं जाना चाहिए। इन नशों में कोई सिद्धि इत्यादि नहीं, न ही उनके द्वारा समाधि लग सकती है। नशा पीने वाले की बुद्धि बिल्कुल गफलत में चली जाती है। उसने जप-तप क्या करना है? जप-तप तो बड़ी सूक्ष्म बुद्धि वाले ही कर सकते हैं। जो इन नशों में पड़कर कहे कि सुरति लग जाती है, महज़ (केवल) धोखा है। पहले खोटे स्वभाव से अपने आप को पवित्र करो। बिल्कुल साधारण खाना-पीना हो जावेगा, तब जाकर देवताओं वाले स्वभाव बन सकते हैं। जिस खुराक और नशे का सेवन करने से शरीर में तकलीफ और मन में विकार पैदा हो जावे वे कैसे सुख शांति दे सकते हैं? इस वास्ते नशीली और मनश्शी चीजों का इस्तेमाल कभी नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 15 : ईश्वर तत्व की तीन आदि शक्तियां ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नाम से विख्यात हैं। इस बारे में आपका क्या विचार है?

उत्तर : प्रेमी, सारी प्रकृति का निज़ाम आठ तत्वों से चल रहा है। जिसमें पांच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) एवं तीन गुण (सत, रज, तम) आते हैं। सतोगुण विष्णु स्वरूप, रजोगुण ब्रह्मा का और तमोगुण महेश का स्वरूप है। इससे अलग और कोई देव स्वरूप नहीं है।

प्रश्न 16 : महाराज जी, रामायण में भगवान राम के लिए आया है कि 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी'। कृपया इसे साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, अवतारों और महापुरुषों का शरीर भी पांच तत्वों का होता है। यहाँ यह भाव नहीं है कि उनका शरीर सत्-चित् आनन्दमय था। लेकिन उनमें इतनी शक्ति होती है कि अगर चाहें तो शरीर को लोप कर सकते हैं।

प्रश्न 17 : महाराज जी, चतुर्भुज नारायण भगवान शेषनाग पर विराजमान हैं- इससे क्या भाव हैं?

उत्तर : प्रेमी, यह सब अन्दरूनी (आन्तरिक) अवस्था का वर्णन है।

नाभि कँवल को शेषनाग करके दर्शाया गया है और नाद शब्द को नारायण का रूप दिया गया है क्योंकि शब्द स्वरूप भगवान की अनुभवता नाभि कँवल में होती है।

प्रश्न 18 : महाराज जी, नाद के क्या अर्थ हैं?

उत्तर : प्रेमी, नाद शब्द को कहते हैं जिसको ऋषियों मुनियों ने परमेश्वर, जगदीश्वर, सर्व प्रकाश, अखण्ड, अद्वैत, परिपूर्ण करके बतलाया है। अनन्त स्वरूप जिस करके भास रहे हैं। हर एक जीव का मालिक, ठाकुर, सर्जनहार वह नाद ही सबकी ज़िन्दगी व जान है। उसको जानकर जन्म जन्मांतरों के दुखों से रहित होता है। उसके जानने से ही तृष्णा अग्नि शान्त होती है। निर्भयपन भी नाद स्वरूप को पाकर आता है। इन मादी आंखों से वह अदृष्ट वस्तु नजर नहीं आती। जब तमाम, आशा, तृष्णा, कामना से न्यारी होकर नाद स्वरूप में बुद्धि स्थित होती है तब यह आकार में फंसी हुई बुद्धि निराकार अवस्था को प्राप्त होकर केवल ब्रह्म को अनुभव करती है। उस अवस्था को नाद-ध्यान कहते हैं। उस स्थिति में प्रवेश करके सत् असत् के निर्णय को अच्छी प्रकार बुद्धि समझ जाती है। तब जाकर मोह माया के जाल से वास्तविक अर्थों में छुटकारा होता है। सब वेद शास्त्र, कुरान, अंजील उस नाद स्वरूप की महिमा गा रहे हैं। लेकिन जितनी जितनी बुद्धि निज स्वरूप में स्थित होती जाती है, उतनी-उतनी ही उस महिमा का वर्णन करती जाती है। कोई इस अवस्था को पाकर खामोश हो जाते हैं। कोई ही सत् पद के मालिक संसारी जीवों के लिए समय निकालकर दया व मेहर करते हैं। उनके क्रियात्मक जीवन को देखकर फिर से लोगों के अन्दर उत्साह आ जाता है। उन्हें प्रतीत होने लगता है कि कोई स्थिति है जिसे पाकर अडोल, अचाहक होकर अपनी मस्ती में आप विराजमान हैं। उस स्थिति की तलाश ही जीवन का लक्ष्य है। प्रेमियों, यह एक महान् कार्य है जिसे संसार में आकर करना मनुष्य के वास्ते परम आवश्यक है। इसी में परम शान्ति और अखण्ड सुख है।

ईश्वर तथा मानव विज्ञान

प्रश्न 19 : महाराज जी ईश्वर क्या है?

उत्तर : प्रेमी, कुल कायनात (संसार) में जो जीवन शक्ति चेतन सत्ता है, जिस करके हर शय (वस्तु), हर वजूद जिंदा है उसे ईश्वर कहते हैं।

प्रश्न 20 : जीवात्मा यानी जीव किसको कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, निश्चय शक्ति यानी बुद्धि जो सारे शरीर रूपी संसार के निज़ाम की देखभाल कर रही है, जीव कहलाती है। इस शरीर में ही कर्म इन्द्रियां, ज्ञान इन्द्रियां और मन से बढ़कर परम तत्व बुद्धि को ही माना गया है। बुद्धि से परे आत्मा सबसे श्रेष्ठ सत्‌तत्व है। इस वास्ते उसको इन्द्रिय–अगोचर महापुरुषों ने कहा है।

प्रश्न 21 : महाराज जी, कैसे यकीन किया जाए कि आत्म–शक्ति सब जगह मौजूद है। शरीर में वह शक्ति काम करती हुई आंखों से नज़र नहीं आती। कृपा करके इसे ऐसे तरीके से समझायें कि यह समझ आ जाए?

उत्तर : प्रेमी, रोज़ाना तुम्हारे अनुभव में यह बात आ रही है कि यह दूध जिसे तुम देखते हो, क्या उसमें घी दिखाई देता है? मेहन्दी के पत्ते शायद तुमने सूखे या हरे देखे होंगे, क्या उनमें लाली नज़र आती है? चकमक एक किस्म का पत्थर होता है, उसमें या माचिस या दियासलाई में क्या आग दिखाई देती है? गन्ना तुमने देखा होगा क्या उसमें मिठास यानि गुड़ दिखाई देता है? चीनी भी इसमें से निकलती है। अनुभव द्वारा समझने वाली इन सब चीजों में घी, लाली, अग्नि, मिठास इन आंखों से नहीं देखी जा सकती है लेकिन अन्दर बुद्धि ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हर घड़ी इन कोटों चीज़ों का विचार कर रही है। कभी भी ग़लती नहीं लग सकती। इसी तरह ज्ञानी संसार में हर समय ईश्वर को ज्ञान नेत्रों द्वारा अनुभव कर रहा है। अज्ञानी को जहां पत्थर दिखाई दे रहा है, भक्त को उसमें भगवान नज़र

आता है। पंडित ने धन्ना भक्त से मख़ौल किया, तोलने वाला पत्थर दे दिया कि इसकी पूजा किया कर। धन्ने ने उसमें भगवान को पा लिया। मतलब यह कि दृढ़ विश्वास हो जाए तो हर चीज़ में वह उस परम शक्ति का विचार करते हुए चलेगा। ऐसा समझकर कि वह जीवन शक्ति उसी तरह हर शरीर के अंदर रोम-रोम को शक्ति दे रही है, वह उसे अनुभव करेगा। जिन्होंने इस शरीर के अन्दर उस परम सत्ता को अनुभव किया, उनको ही भक्त, ऋषि, मुनि, गुरु कहा जाता है। जिस तरह साधन द्वारा घी, अग्नि, लाली, मिठास प्राप्त होती है, उसी तरह शरीर के अंदर भी वैसे ही साधन द्वारा उस परम ज्योति का साक्षात्कार होता है। तुम जिस समय सही कोशिश करोगे, अपने अंतर्गत आत्म सत्ता को अनुभव कर सकोगे।

प्रश्न 22 : देह के नष्ट होने पर जीव की क्या हालत होती है?

उत्तर : देह के नाश होने से जीव दूसरी देह को धारण करता है, उसी क्षण में अपनी ख्वाहिश के मुताबिक। यह उपदेश अर्जुन को श्रीकृष्ण ने समझाया है कि जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतारकर नये धारण कर लेता है, उसी तरह एक देह से दूसरी देह में जीव प्रवेश करता है। नग्न हालत अर्थात् बगैर योनि प्रवेश के एक लम्हा (क्षण) भी अलग नहीं रह सकता।

प्रश्न 23 : क्या अकाल मृत्यु कोई चीज है?

उत्तर : अकाल मृत्यु कोई चीज नहीं है, सिर्फ तीन तापों से शरीर का नाश होता है:-

(1) आधि अर्थात् मन के अत्यधिक खेद से।

(2) व्याधि अर्थात् शारीरिक रोग से।

(3) उपाधि अर्थात् बाहर की किसी दुर्घटना से।

ये तीनों ताप कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। और लाज़मी (अनिवार्य) हैं। शरीर का अन्त होना इन्हीं कारणों से है।

प्रश्न 24 : मन क्या है?

उत्तर : मनन करना। ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा को मनन करने वाली शक्ति को मन कहते हैं।

प्रश्न 25 : महाराज जी, मेरे मन की स्थिति कभी-कभी इस प्रकार हो जाती है कि किसी काम में तथा किसी भी अवस्था में तबीयत नहीं लगती। मन उचाट हो जाता है और बड़ी बेचैनी प्रतीत होती है। क्या आप कृपा करके इसका कारण बतलाएंगे? और साथ ही इसका उपाय भी जानना चाहता हूं।

उत्तर : प्रेमी जी, अपने जीवन का सही लक्ष्य और उसके पहुंचने का प्रोग्राम न बनने के कारण ऐसी हालत का सामना करना पड़ता है, सो निश्चय करके जानो।

प्रश्न 26 : महाराज जी, यदि ऐसा ही है तो वह अवस्था हर समय रहनी चाहिए, परन्तु यह देखा गया है कि ऐसी अवस्था कभी-कभी आती है। कृपा करके इसे समझाएं।

उत्तर : हां, यह मन बड़ा चालाक है। कोई न कोई उम्मीद खड़ी कर ही लेता है और उसी आशा में अपने आप को लगाए रखता है। उसी आशा को पूर्ण करने की खातिर बड़े जोश के साथ उधेड़-बुन में लगा रहता है। इसी कारण पता नहीं चलता। वास्तव में इस शरीर में तीन गुण मौजूद हैं। जब सतोगुण प्रधान होता है तो बुद्धि शान्त होकर कुछ सुख अनुभव करती है। जब रजोगुण प्रधान होता है तो बुद्धि चंचलता को धारण करके सांसारिक क्रियाओं में प्रवृत्त होती है और एक लम्हा भर शान्ति से नहीं बैठ सकती। जब तमोगुण प्रधान होता है तो यह अवस्था आ जाती है जैसा कि तुम्हारा प्रश्न है अर्थात् बुद्धि हर समय डांवाडोल रहती है और बड़ी बेचैनी महसूस होती है। आलस्य तथा प्रमाद की प्रधानता हो जाती है। ऐसा ही यह अद्भुत खेल माया चक्र संसार है। तुमको चाहिए कि अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित करो, उसको प्राप्त करने के लिए अपनी ज़िन्दगी का प्रोग्राम बनाओ और फिर कमर कसकर उस पर चल पड़ो, तो फिर इन सब अवस्थाओं से छुटकारा पा जाओगे।

प्रश्न 27 : मनुष्य जीवन का ध्येय क्या है?

उत्तर : मनुष्य जीवन का ध्येय निर्भय शान्ति है अर्थात् ऐसी खुशी

जिसमें तबदीली का डर न हो। यह तब ही हासिल हो सकती है जब जिस्म की खोज करके उसके अन्दर जो जीवन शक्ति है उसे मालूम किया जावे। यह जीव अज्ञान की वजह से वास्तविक शान्ति की तलाश अपने अन्दर करने के बजाए संसारी पदार्थों में कर रहा है। चूंकि संसार की सब चीजें नश्वर एवं क्षणिक हैं इसलिए उनसे मिलने वाले सुख भी नश्वर एवं क्षणिक होने की वजह से दु:ख और अशान्ति का कारण बन जाते हैं।

प्रश्न 28 : महाराज जी, इस दुनिया में दु:ख क्या है?

उत्तर : लाल जी, जिस वस्तु की यह मन इच्छा करता है एवं उसमें सुख प्राप्त करने की कल्पना बना लेता है, जब वह पूर्ण नहीं होती तो दु:ख का जन्म हो जाता है अर्थात् मन की चाह की अपूर्ण हालत का नाम ही दु:ख है। वैसे दु:ख का अपना असली स्वरूप कोई नहीं है। मन की कल्पना करके ही दु:ख है, मन ही कल्पना करके ही सुख।

प्रश्न 29 : महाराज जी, दु:ख का कारण क्या है?

उत्तर : शरीर और शरीर से संबंधित पदार्थों में ममता ही दु:ख का मूल कारण है।

प्रश्न 30 : असली सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर : चाहे कोई गृहस्थी है या विरक्ती है, असली सुख आत्म परायण होने से ही प्राप्त होता है जो खुशी ग़मी से ऊंचा है। मालिके कुल का कानून सबके वास्ते बराबर है। जो सत् मार्ग की तरफ जाएगा वह शान्ति को प्राप्त होगा और जो अभिमान वश होकर उपद्रव करेगा वह परम दु:खी होवेगा। यह सार सिद्धान्त है।

प्रश्न 31 : महाराज जी, व्यक्ति जब कुछ सुख या आराम थोड़ी देर के वास्ते महसूस करता है तो वह कहता पाया गया है कि मुझे बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। क्या यही वह शान्ति है या इसका भी कुछ और स्वरूप है?

उत्तर : लाल जी, यह तो लोगों ने अपना मन पसन्द नाम दे रखा है। तुम उसे असली शान्ति का मुलम्मा (नकली नाम) कह सकते हो। असली

शान्ति शरीर में नहीं है। शरीर में तो सुख और दुःख है। शांति का कोई ताल्लुक सुख और दुःख से नहीं है। वह इनसे भिन्न वस्तु है। जब यह बुद्धि उस प्रकाश स्वरूप चेतन सत्ता को जानकर उसमें लय हो जाती है, जिसके द्वारा यह शरीर प्रकाशवान है, तो यह अवस्था पूर्ण शान्ति कहलाती है।

प्रश्न 32 : महाराज जी, ईश्वर को मानने से क्या आराम मिलता है, और न मानने से क्या तकलीफ मिलती है?

उत्तर : प्रेमी, ईश्वर के मानने से इन्सान विकारी जीवन से बचकर गुणाचारी जीवन को अपनाता है और असली स्थायी शान्ति को हासिल करता है। ईश्वर को न मानने से यह जीव संसारी सुख–दुःख में फंसकर नित ही अशांत और अधीर रहता है।

प्रश्न 33 : महाराज जी, प्रेम और मोह में क्या फर्क है?

उत्तर : प्रेमी, प्रेम उस हालत को कहते हैं जब परमेश्वर की याद में तन्मय होकर अपने आपको बुद्धि भूल जाती है और मस्ती का आलम उस प्रेमी के चारों तरफ छा जाता है। वहां तड़प नहीं होती। यह अवस्था वियोग और संयोग से रहित है, गर्ज़ और फर्ज़ से ऊंची है, हर्ष और शोक से न्यारी है। इसके विपरीत जीव की शरीर और शरीर से संबंधित संसार से गहरी पकड़ का नाम ही मोह है। मोह हमेशा स्वार्थवश होता है। संयोग में भी वियोग का भय लगा रहता है। अगर फर्ज़ करके दिखाई भी दे तो भी सूक्ष्म रूप से उसमें गर्ज़ छिपी हुई होती है।

प्रश्न 34 : महाराज जी, परमात्मा से प्रेम कैसे होवे?

उत्तर : प्रेमी, उस प्रभु में पूर्ण निश्चय और दृढ़ विश्वास से प्रभु प्रेम पैदा हो जाता है। इसके अलावा आत्म संबंधी विचारों के स्वाध्याय और मनन से, सन्तों के संग से और सतग्रही पुरुषों के जीवनचरित का गहन अध्ययन करने से, उनकी कहनी, रहनी और सहनी को रोज़ाना हर समय विचार करने से प्रभु प्रेम का बीज हृदय रूपी जमीन पर उग जाता है।

प्रश्न 35 : बुद्धि क्या है?

उत्तर : निश्चय करना। मन के दोषों को अच्छा या बुरा समझने वाली शक्ति को बुद्धि कहते हैं।

प्रश्न 36 : महाराज जी, बुद्धि वासना रहित कैसे होती है?

उत्तर : शरीर वासना का समुन्द्र है। आत्मा वासना व कर्म से न्यारी है। बुद्धि शरीर को समझ रही है और इसकी वासना को भी समझ रही है। जब तक आत्मा को नहीं समझती, वासना रहित नहीं होती। जो साधन सत्पुरुषों ने आत्म अनुभवता को प्राप्त करने के बतलाये हैं, उन्हें धारण करो। तब बुद्धि वासना रहित हो जावेगी।

प्रश्न 37 : मनुष्य को विद्या, ज्ञान की चाह क्यों बनी रहती है? भौतिक जगत की जितनी खोज बुद्धि करती है उतनी ही क्लेश को प्राप्त होती है। महाराज जी, ऐसा क्यों, कृपया इसे स्पष्ट करें।

उत्तर : बुद्धि का स्वभाव खोज करना है। जब तक पूर्ण बोध आत्म स्वरूप का प्राप्त नहीं होता तब तक इसकी निरंतर खोज की इच्छा बनी रहती है।

'माया परस्ती' की तहकीक़ात (खोज) अधिक से अधिक रंज व ग़म (संताप) और खोज दर खोज को बढ़ाने वाली है अर्थात् ठैराव या पूर्ण शान्ति कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। यह ही खेद स्वरूप संसार है। जब बुद्धि सत् तत्व आत्म स्वरूप की खोज में लगती है तब पूर्णता को प्राप्त होती है अथवा पूर्ण बोध, पूर्ण सूझ को प्राप्त करके शान्त हो जाती है। इस अवस्था को 'निर्वाण' कहा गया है। सत् की खोज के बिना जितनी भी कोशिश है वह शोक और संताप को देने वाली है जैसी कि प्राय: विद्वानों की अवस्था होती है।

प्रश्न 38 : महाराज जी, बुद्धि की 'जड़' और 'जागृत' अवस्था को समझावें।

उत्तर : लाल जी, जितनी बुद्धि जड़ होती है, अहंकार वाली होती है,

वह शरीर को अच्छा और भला करके देखती है। अथवा शरीर के इन्द्रिय संबंधी सुखों को अपना सार साधन मानकर उनको ही प्राप्त करने में अपना समय व्यतीत कर देती है लेकिन जागृत बुद्धि जब मनुष्य की होती है तो उसे यह दीखने लगता है कि यह शरीर नाशवान है। इस शरीर में कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसमें दिल लगाया जावे। ऐसा विचार जब इसका परिपक्व होता है तो उस समय प्रभु प्रेम पैदा होता है और वह बुद्धि विचार करती है कि जिस महान शक्ति ने उसे बनाया है क्यों न उसकी बन्दगी (याद) की जावे। फिर प्रभु के याद करने से जितना प्रेम इस शरीर से है उससे अधिक प्रेम से परमात्मा की तरफ लग जाता है। महापुरुषों की यह ही निशानी है कि वह अपनी चेष्टा शरीर में न रख कर शरीर की प्रकाशक शक्ति में रखते हैं–

अमृत छोड़ कर बिख को खावे, यह देखा संसार।
बिख को छोड़ जो अमृत खावे, सो बिरला बलहार।।

बिख = विष

✶✶✶✶

प्रश्न 39 : जितने भी महापुरुष दुनियां में हैं उनके उपदेश को सुनकर धारण करने से कल्याण होता है या केवल उनके दर्शन भेंट से?

उत्तर : जितने भी सत्पुरुष संसार में आए हैं उनका सत् उपदेश जीवन में धारण करने से कल्याण होता है केवल दर्शन से कुछ नहीं होता। दुर्योधन, कैकेयी और भी लाखों उदाहरण हैं। अगर केवल दर्शन से ही कल्याण होता तो अर्जुन में कायरता पैदा न होती और श्रीकृष्ण को उपदेश देना न पड़ता। इसलिए सत् उपदेश को धारण करने की कोशिश करें। यही उनकी पूजा है और इसी में कल्याण है, विचार करें।

प्रश्न 40 : मूर्ति पूजा के बारे में आपका क्या विचार है? इस समय जो मूर्ति पूजा चल रही है उसमें कई प्रकार के साधन नाचने, कूदने, घंटी, चिमटे, खड़तालें और भी कई प्रकार के बाद्य यंत्र इस्तेमाल करने का जो चलन है क्या यह साधन मन को शांति दे सकता है?

उत्तर : मूर्ति पूजा का यही लाभ है कि सत्पुरुष के स्वरूप को देखकर उनके गुण और कर्म को अपने जीवन में धारण किया जाए। प्रेमी, नाराज न होना, कबीर ने फैसला कर दिया है:–

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहाड़,
याते तो चक्की भली जो पीस खाए संसार ।
कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद लई बनाय,
तां चढ़ मुल्ला बाँग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।

प्रेमी, संसार का निर्णय करने वाले फकीर किसी का लिहाज़ नहीं करते। यह सब साधन मन बहलावे के वास्ते हैं। आगे ही मन बड़ा चंचल है। सिमरण–ध्यान की बजाए अगर इसे और साँगोपांग में लगा दिया जाएगा तो और भी चंचल होगा। कभी कृष्ण की भक्ति करता है, कभी राम की, फिर शिव की शुरू कर देता है। वहां से स्वार्थ पूरा नहीं हुआ तो हनुमान की शुरू कर देगा। ये जितने भी देवी–देवताओं, अवतारों की पूजा,

सिमरण, ध्यान में जीव लगे हैं, सब स्वार्थवादी हैं। कृष्ण खुद गीता में फरमाते हैं:-

* हे अर्जुन, जो लोग दूसरे देवी-देवताओं में श्रद्धा करके उनकी उपासना करते हैं, वह मेरी बेकायदा पूजा है। इसी कारण उन लोगों को मुक्ति नहीं मिलती और वे आवागमन के चक्र में फंसे रहते हैं। जो पुरुष स्वार्थ से रहित निष्काम चित्त से मेरी उपासना यानी आत्मा की खोज करते हैं, उनको फिर मैं आवागमन से छुड़ा लेता हूं।

प्रेमी, किसी जगह उन्होंने अपने शरीर की भक्ति नहीं बतलाई। आत्म भक्ति के बारे में ही सारी गीता में वर्णन है। शरीर नित तबदीली युक्त है, आत्मा नित्य अविनाशी है और घट-घट में सर्व व्यापक है। मूर्ख लोग आत्म-आनन्द को जानने की कोशिश नहीं करते।

संसार के किसी काम को करने के वास्ते जब सोचा जाता है तब बड़े एकाग्र होकर विचार करने पर सही सोच आती है। ईश्वर कुल संसार का मालिक है, उस महान् तत्व को समझने के लिए नाचना, कूदना क्या काम करेगा? बड़ी कुशाग्र बुद्धि द्वारा सूक्ष्म अवस्था को जाना जाता है। जब तुम सत्पुरुषों के असूल, शिक्षा और ज्ञान विचार करोगे तब तुम्हारा सब वहम (भ्रान्ति) दूर हो जायेगा। भ्रामक धारणाओं वाली संशय युक्त बुद्धि क्या कभी सत्मार्ग में लग सकती है? सब चैतन्य महाप्रभु, मीरा नहीं बन सकते। उनके अन्दर कई जन्मों की जाग लगी हुई थी। जिस राग में वे मग्न थे वे सब उनके अन्दर की हालत थी जिसमें वे मस्त रहते थे।

प्रेमी, सत्पुरुषों के जाहिरी चिन्हों को धारण करने से सत्पुरुष नहीं बन जाता, उनकी शिक्षा धारण करने में जीव का कल्याण है। महापुरुष देश काल के अनुसार कई प्रकार के भक्ति साधन प्रकट कर दिया करते हैं।

---

* ये अपि अन्यदेवताः भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
ते अपि मामेव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम् ।।

गीता - 9-23

हे अर्जुन, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किन्तु उनका यह पूजना अविधिपूर्वक है अर्थात् अज्ञानपूर्वक है।

गाना बजाना यह काम इन्द्रिय का विषय है। हर एक शरीरधारी के अन्दर रंग लगा हुआ है। जो उसे सुनने, समझने का यत्न करता है उसने ही ज्ञान ध्यान के सार को पाया है। प्रभु कीर्तन ढोलकी बाजों से नहीं बनता। यह तो दो चार घण्टे बजा करके बाद में जब थक जाता है, छूट जाता है, अखंड नहीं रहता। लगातार महिमा जो अन्तर्गत नित्य प्रति हो रही है, जब तक बुद्धि उसमें लवलीन नहीं होती, जन्म मरण का ताँता नहीं टूटता। यत्न करते-करते जिस समय बुद्धि त्रिकुटी में स्थित नाद स्वरूप परमेश्वर को बोध करती है, तब जाकर इसका चंचलपना खत्म होता है और काल के भय से परे होकर निर्भय अवस्था को प्राप्त हो जाती है। तभी गुरु महिमा का पता लगता है। सत्पुरुष साधारण जीवों के वास्ते छोटे-छोटे साधन कई बार रुचि बढ़ाने के वास्ते बताते आए हैं। यह नहीं कि सारी उम्र 'अलफ, बे' यानी 'क, ख' ही पढ़ते रहें। आगे बढ़ने का यत्न भी करना चाहिए। सत्पुरुषों ने वेद, ग्रंथ, गीता, उपनिषद् वगैरा शास्त्र किस वास्ते रचे हैं? इसीलिए न, कि अच्छी तरह से विचार करके सही तरीका धारण किया जावे। अब तुम ही बताओ कि क्या करना चाहिए।

प्रश्न 41 : महाराज जी, संसारी काम करते हुए प्राणी नाम-चिन्तन कैसे करे?

उत्तर : प्रेमी, संसारी कामों को करते हुए प्राणी नाम चिन्तन इस तरह से कर सकता है-अपने कारोबार में लगा हुआ इन्सान फर्ज़ करके अपने कामों को निपटाता रहे लेकिन चेष्टा उसकी उसको खत्म करके नाम परायण होने की बनी रहे। इस चेष्टा की कशिश और खिंचाव सूक्ष्म रीति से नाम के परायण होना ही है यानी कर्म करते समय तो नाम सिमरण नहीं हो सकता, लेकिन ध्यान में उधर की तरफ खिंचाव होना ही सूक्ष्म प्रकार से नाम परायण होना है- जब काम खत्म हो जाये तो अपनी उसी कशिश और खिंचाव करके, जो उसमें पहले से मौजूद थी, नाम सिमरण शुरू कर देना चाहिए।

प्रश्न 42 : महाराज जी, उस परमात्मा के हजारों नाम हैं। क्या कोई भी नाम जपने से कुछ काल के बाद सिद्धता प्राप्त हो जायेगी? मैंने कई मनुष्य देखे हैं जो जन्म भर नाम रटते रहे और उनका कुछ न बना। आखिर इसमें ज़रूर ही कुछ राज़ होगा। आपकी इस बारे में क्या राय है?

उत्तर : प्रेमी जी, परमात्मा के नाम अनेक हैं और वे सब ठीक हैं। परन्तु जो नाम किसी अनुभवी तथा कमाई किए हुए सिद्ध पुरुष से प्राप्त होता है, वह ही नाम असल में कुछ कमाई करने के बाद जैसा वह सिद्ध पुरुष बतलाए, कारगर होता है। जैसे कि किसी भी तलवार बनाने वाले की दुकान में तलवारें टंगी हैं और वे हैं भी सब तलवारें ही, मगर जो तलवार शूरवीर के हाथ में होगी वही तलवार असल में तलवार है। वह शूरवीर ही तलवार के इस्तेमाल का तरीका बतला सकता है और उस पर यकीन भी किया जा सकता है। उसके अलावा तो तलवारें उस तलवार वाले दुकानदार के पास हैं, वे देखने में तो तलवारें दिखाई देती हैं, पर वास्तव में लोहे का टुकड़ा ही हैं। ऐसा ही तुम नाम के बारे में समझो। सब परमात्मा के नाम ही हैं, पर सत्गुरु द्वारा दिये गये नाम की महिमा अपार है। जो कहते हो कि नाम के जपने वाले सैंकड़ों देखे हैं और उनका कुछ नहीं बना, सो ठीक है। हर प्रकार के काम करने के लिए, चाहे वह सांसारिक हो या परमार्थिक बिना युक्ति के किसी काम में सफलता प्राप्त नहीं होती।

प्रश्न 43 : बड़े-बड़े महापुरुष बिना गुरु के ही स्वयं उद्यम से बड़े ऊंचे पहुंच गए तो क्या हमारा काम इसके बिना नहीं चल सकता, जबकि इस काल में पूर्ण गुरु का मिलना बिलकुल असंभव है। चारों तरफ ढोंग एवं पाखंड के अड्डे नज़र आते हैं।

उत्तर : महापुरुषों की बात छोड़, तू अपनी बात कर। ऐसे महापुरुष बहुत थोड़े होते हैं जो जन्म के सिद्ध हुए हैं। यह उनके पिछले जन्मों की कमाई थी। बाकी सब किसी साधन से ही असली सफलता को प्राप्त हुए हैं। इस वास्ते किसी भी सिद्धि को प्राप्त करने की खातिर वाकिफकार (परिचित व्यक्ति) की ज़रूरत रहती है। यह प्रकृति का नियम है। प्रेमी जी,

जरा से काम को करने के लिए तो कदम-कदम पर, यहां तक कि व्यापार में भी, सहारे की तथा उस्ताद या एक्सपर्ट की ज़रूरत पड़ती है। इतनी बड़ी मंज़िल परमार्थ की पार करना बच्चों का खेल नहीं, जिसकी अभी शुरुआत (आरम्भ) भी नहीं हुई है। हां, यह ज़रूर है कि इस समय पाखंड का बाज़ार गरम है और कामिल सत्गुरु मिलने कठिन हैं पर खोजने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है, बीज नाश नहीं होता।

प्रश्न 44 : आप तो घूमते ही रहते हैं, आप किसी कामिल (पूर्ण) गुरु को बतला सकते हैं? या कम से कम मेरे ख्याल में ऐसी पहचान बतला सकते हैं जिसकी कसौटी पर हम उसे रखकर पहचान लें? मैं तो पाखण्ड तथा गुरुडम का शिकार होने की बजाए बिना उस्ताद के रहना ज्यादा बेहतर समझता हूं। आप की क्या राय है? शास्त्रों में पहचान दे रखी है। पर आजकल वह किसी में पूरी नहीं उतरती, सो आप कोई आसान-सा उपाय बतलाएं।

उत्तर : लाल जी, यह बिलकुल ठीक है कि पाखंड में फंसने की बजाए निगुरा (बिना गुरु) ही रहे। परन्तु निरंतर खोज में लगे रहना चाहिए। हां, ये तुम्हें थोड़े से में कामिल गुरु की पहचान बतला सकते हैं। उन पर पूरे उतरे हुए पुरुष से तुम धोखा नहीं खाओगे। तो लो, सुनो या लिख लो-

(1) कहनी और रहनी जिसकी एक है।

(2) जो अपने आप में ही पढ़ा हुआ हो, यानी किताबी ज्ञान का जानने वाला न हो बल्कि मन की किताब पढ़ा हुआ हो।

(3) मानसिक शान्ति का नमूना (आदर्श) हो।

(4) शरीर के मान और धन के लोभ से जो मुबर्रा (मुक्त) हो।

(5) बैठक जिसकी बहुत हो।

(6) स्त्रियों से तो कतई किनाराकश हो, यानी किसी हालत में भी अकेली स्त्री को पास न बैठाने वाला हो।

(7) निहायत दयालुचित्त हो।

(8) वैराग्यवान जिसकी हर वक्त सीरत (स्वभाव) रहती हो, यानी जो लिप्त न हो।

(9) जो नौ दरवाजों की वासना से अतीत होकर सदा महाआकाश (अविनाशी शब्द ब्रह्म) में विराजमान रहता है। ऐसा आत्मनिष्ठ पुरुष परम गुरु है, क्योंकि उसने त्रैगुणी माया से अबूर (पार) पाकर विश्राम पाया है और वह दूसरों के लिए भी परम शिक्षक है। ऐसे गुरु में तत्काल विश्वास करना चाहिए। विश्वास या श्रद्धा के होते ही गुरु कृपा तेरे अन्दर अपने आप उतरने लगेगी और फिर गुरु कृपा से जो साधन प्राप्त होगा, उसकी कमाई करके तू उस शक्ति को समझने लगेगा जो तेरे शरीर से बिलकुल अलग है क्योंकि तेरे शरीर में भय, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, मरना, जीना इत्यादि विकार हैं। आत्मा इनसे परे है। जब तू उस आत्म स्वरूप में स्थित होगा, तो किसी भी हालत में जीकर शान्त रहेगा। यानी जब तू साधन में लग जावेगा तो चाहे कैसी ही हालतों में से क्यों न गुजरे, शान्त रहेगा। बगैर साधन के तू ऐसा ही है जैसे पानी बिना घड़ा।

प्रश्न 45 : महाराज जी, यदि कोई तत्ववेत्ता सत्गुरु न मिले तो फिर क्या करना चाहिए?

उत्तर : प्रेमी, जिस जिज्ञासु के अन्दर प्रभु प्राप्ति के लिए अति प्रेम और श्रद्धा होती है तथा लगन और तड़प इस प्रकार की हो कि सिवाय भगवद् प्राप्ति के दूसरी कोई कामना चित्त के अन्दर न हो, उसे स्वयं ही भगवान किसी न किसी रूप में आकर दर्शन दे जाते हैं। एक नुक्ता और समझाते हैं। ज़रूरी नहीं कि तू मठों और गद्दियों में जाकर परेशान होता फिरे। अन्तर्यामी घट-घट की जानने वाले हैं। किसी न किसी प्रकार से उसे उपदेश मिल ही जाता है। करने वाले प्रभु ही हैं।

प्रश्न 46 : महाराज जी, शुरू में आत्मचिन्तन में कठिनाई होती है। क्या पहले तीर्थ यात्रा वगैरह साधनों को धारण कर लिया जावे, उसके बाद आहिस्ता–आहिस्ता आत्म–चिन्तन सम्भव हो सकेगा? बच्चों और अनपढ़ व्यक्तियों के लिए तो यह बहुत मुश्किल है। कृपा करके इस पर प्रकाश डालें।

उत्तर : प्रेमी, सीधा होकर चल। हेर फेर डालने का समय नहीं। जीवन थोड़ा है, मंज़िल लम्बी है, सन्तों का मार्ग एक ही है। सबसे पहले समता के पांच असूलों–सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत्–सिमरण को जीवन में धारण करना और बच्चों को भी उन्हीं पांच असूलों की शिक्षा देना, उन्नति का मार्ग है। सबसे पहले सदाचारी जीवन होना बड़ा ज़रूरी है। भगवान की सबसे बड़ी पूजा यह ही है।

प्रश्न 47 : सदाचारी बनने के लिए किन विशेष बातों को जीवन में लाना चाहिए? कृपया साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, इस समय सदाचारी बनना बड़ा दुर्लभ है। जब सदाचारी बनेगा तभी आत्म साक्षात्कार करने लायक बन सकेगा। इन पाँच बातों को अगर जीवन में घटा पावे तो सदाचारी जीवन बन सकता है।

1 जीवन सादा और सरल बनावें।

2 नशीली चीजें, नुमायशगाह (सिनेमा, थियेटर वगैरह) से परहेज़ करें। यह बुद्धि को मलीन करते हैं और चंचलता बढ़ाते हैं।

3 भूलकर भी कुसंग का सेवन न करें।

4 हमेशा गुणी पुरुषों के पास बैठे, चाहे वहां बैठकर तेरी समझ में कुछ न आता हो। एक समय आवेगा कि तू गुणी पुरुषों के विचारों को समझने लगेगा। गुणी पुरुषों के संग का बड़ा असर होता है।

5 मन से छल और कपट को त्यागकर सरल और निष्कपट होजा इससे तू बड़ी मुसीबतों से बचकर परम शांत अवस्था को प्राप्त करेगा।

प्रश्न 48 : महाराज जी, तीर्थ पर जाने का कुछ लाभ है या भटकना ही रहता है?

उत्तर : तीर्थ यात्रा अच्छी है, सैर हो जाती है। जो उद्देश्य असली था वह तो ख़त्म हो गया है। पुरातन समय में तीर्थों पर सन्तों का बास हुआ करता था, जो भी जाता था कुछ ग्रहण करके आता था। जिस जगह कोई प्रभु का प्यारा बैठा हुआ हो या जिस जगह हरि कथा होती हो, तत्व ज्ञान का विचार हो, किसी ग़रीब यतीम की सेवा हो रही हो, ये सब जगहें तीर्थ ही हैं। यह नहीं कि जिस जगह जल ज्यादा चलता हो वह तीर्थ है।

तीर्थों पर जाने की महानता सिर्फ इतनी ही है कि जनता का संगठन आसानी से हो सकता है। वहाँ पर आए हुए सन्त महात्मा अच्छी तरह अपना विचार सुना सकते हैं। सत् विचार हो गये, स्नान हो गया, कुदरती जगहें देखी गई, मन प्रसन्न हो गया। बस यही तीर्थ का लाभ है।

प्रश्न 49 : महाराज जी, गति किसको कहते हैं?

उत्तर : प्रेमी, वासना से निर्वास होना यह असली गति है। जब सत् स्वरूप परमेश्वर चित्त में दृढ़ हो जाता है संसार की इच्छा, कामना ख़त्म हो जाती है, कर्म बंधन टूट जाते हैं, सब कुछ कर्त्ता हर्ता उस प्रभु को मानता है, अपनी 'मैं' भावना बिल्कुल निकल जाती है यानी अहंकार ख़त्म हो जाता है, इस अवस्था को गति कहते हैं। ऐसी गति तो जीव अपने आप ही कर सकता है। अगर खुद वासना की गिरफ्तारी में है तो दूसरों को गति कौन दे सकता है। गति पैसे, पाईयां, लौंग, इलाइचियों द्वारा कैसे हो सकती है। हर एक जीव को सुख दुख अपने शुभ अशुभ कर्मों अनुसार मिलता है। इसलिए करनी मलीन होने पर मेरी गति मेरे बच्चे, भाई बंध या पंडित कैसे करवा देंगे। जब तक अपने कर्म साफ नहीं तीर्थों का भ्रमण, देवी देवताओं का पूजन, पिंड आदि गति नहीं दे सकते। प्रेमी, जाकर सत् विश्वास द्वारा सिमरन, ध्यान, सेवा, सत्संग करो जिनसे चित्त ठंडा रहे। जो पुराने वहम व तोहमात में फंसा रहता है उसकी गति कभी न होगी, न कोई उसकी गति कर सकता है। ईश्वर विश्वासी लोग सत्कर्मों में प्रवृत्त रहते हैं। निर्मल चित्त से ईश्वर की याद में रहना, संसार को नित असत मानना, उस महाप्रभु

को कर्त्ता हर्ता जानकर नित सब जीवों से प्रेम करना यह ही सत्कर्म जीव को गति देने वाले हैं। जो ज़िंदगी में कुछ नहीं करते उनके वास्ते आगे परमात्मा ने गति देने वाला दफ्तर नहीं खोल रखा है। इस वास्ते अपनी गति आप करनी होगी। दूसरे के भरोसे रहने वाला कभी सुखी नहीं होता। ईश्वर आपको सत् बुद्धि देवे।

प्रश्न 50 : महाराज जी, महाभारत ग्रंथ में आया है कि उस वक्त पिण्डोदक क्रिया, पितर आदि को मानने का सिलसिला परंपरागत चल रहा था। गीता ग्रंथ में भी श्री कृष्ण महाराज से वीर अर्जुन ने कहा है कि अगर लड़ाई होगी तो हजारों लोग उसमें मारे जावेंगे और उनकी विधवाएं दुनिया में वर्णसंकर फैलाने का कारण बनेंगी। पिन्डोदक कर्म लुप्त हो जावेंगे और पितरगण अधोगति को प्राप्त होंगे। महाराज जी, आपसे प्रार्थना है कि इसे आप साफ करें।

उत्तर : प्रेमी, महाभारत ग्रंथ के बारे में पता चला है कि राजा भोज के जमाने में इस ग्रंथ में दस हजार श्लोक थे। अब इसमें एक लाख से ऊपर श्लोक हैं। इससे पता चलता है कि असलियत कभी की गायब हो चुकी है। ब्राह्मणों ने अपना मतलब सीधा करने की खातिर जैसा चाहा, अपने मतलब का उसे घड़ लिया। दूसरी बात यह है कि उस जमाने में भी दुनिया में अन्धकार परस्ती जारी थी। गीता ज्ञान की जरूरत श्री कृष्ण ने अर्जुन को इसीलिए महसूस करवाई कि अंधकार से हटकर प्रकाश की तरफ आवे। श्री कृष्ण ने गीता में साफ तौर से उच्चारण फरमाया है कि–हे अर्जुन यह असली ज्ञान जो मैं तुझको बता रहा हूं कोई नया नहीं है। पहले भी पुरातन बुजुर्गों ने इस ज्ञान को लोगों से कहा है, आज फिर जब वह ज्ञान दुनिया भूल चुकी है मैं तुझको बतलाता हूं। तू अंधेरे से जागृत होकर मेरे इस शुद्ध ज्ञान को सुन जो पहले भी था, आगे भी रहेगा। आज वह ज्ञान कालचक्र से लुप्त (लोप) हो गया है, इसलिए फिर तेरे आगे रखता हूं। इस ज़माने में तू और तेरे आसपास के लोग अंधकार में पड़े हुए हैं। तेरी बातें बुद्धिमान होते हुए भी मूर्खता की सी हैं। जो चीज़ सोचने लायक नहीं है उसके बारे में तू सोच करता है और फिर पण्डितों की सी बातें करता है। यह तुझे शोभा नहीं देता।

इस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन को बहुत सी बातें कही हैं। और सचेत किया है। प्रेमी, इस तरह सब पितर वगैरह का चक्कर ढोंग है। जीव चार प्रकार की सृष्टि में विचरता है अंडज, ज़ेरज, स्वेदज और उद्भिज। कितने से कितना सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर किसी जीव का हो, वह भी इन सृष्टियों में से ही होगा। पितरों का इन सृष्टियों से अलग कोई वजूद नहीं होता। ब्राह्मणों ने अपना रोज़गार चलाने के लिए यह सब कल्पना (पितरों, गति इत्यादि की) कल्पी हुई है। तेरे माता पिता, बुजुर्ग जब तक इस नश्वर शरीर में वास करते हैं तेरे पितर हैं। तू उनकी सेवा कर और हर प्रकार से उन्हें सन्तुष्ट कर, यह ही तेरे पितरों की पूजा है। इसके अलावा जब शरीर छोड़कर जीव चल देता है तो उसका तेरे साथ सम्बंध ख़त्म हो जाता है।

यह जीव सदा अविनाशी है, एक शरीर को छोड़कर फौरन (तत्काल) दूसरा धारण कर लेता है। अब बताओ, कौन तेरा पितर रहा? दूसरे शरीर में जाकर दूसरों से सम्बन्ध कायम (स्थापित) कर लेता है। इस तरह से जन्म मरण को प्राप्त हुआ यह जीव इस सृष्टि में घूम रहा है। अब किसको पितर कहा जाये? इस सिलसिले को अच्छी तरह समझ लो।

प्रश्न 51 : महाराज जी, श्राद्ध करने का क्या लाभ है?

उत्तर : प्रेमी, श्राद्ध करना तो बड़ा पुण्य नहीं, बल्कि बुजुर्गों की याद मनाने का एक तरीका है। आप रोजाना ही उनकी याद दिल में रखें, हर वक्त गरीबों की अन्न पानी से सेवा श्रद्धापूर्वक करने में कोई हर्ज़ नहीं।

प्रश्न 52 : महाराज जी, श्राद्ध में किया हुआ दान प्राणी को मिलता है या नहीं?

उत्तर : श्री महाराज जी (मुस्कराकर): प्रेमी, पहले यह तो बताओ कि जो कुछ दान दिया जाता है, प्राणी के नाम पर दिया जाता है या कुछ और?

प्रेमीः महाराज जी, नाम पर दिया जाता है।

श्री महाराजः प्रेमी, नाम किसका? शरीर का या जीवात्मा का?

प्रेमी (कुछ देर सोचकर): महाराज जी, नाम तो शरीर का होता है।

श्री महाराज जी : मरने पर शरीर को अग्नि के सुपुर्द कर दिया, पांच तत्व अपने तत्वों में मिल गये, जीवात्मा का कोई नाम नहीं है। अब आप ही समझ लो कि दान किसको मिलता है। प्रेमी, यह तो पहले भले पुरुषों ने दान की प्रणाली चलाने के वास्ते समाज के लिए एक विधान बना छोड़ा है, ताकि इस तरह कुछ न कुछ दान होता रहे और दान करने की परिपाटी बनी रहे।

प्रश्न 53 : महाराज जी, जीव की गति कैसे हो सकती है?

उत्तर : प्रेमी, जीव की गति इन धारणाओं से हो सकती है–अपनी करनी का सुधार करके, दृढ़ निश्चय से ईश्वर स्मरण करके, अपने आचार को दुरुस्त (ठीक) करके, सत्पुरुषों के जीवन के अनुकूल अपना जीवन बनाके, कर्त्ता हर्ता महाप्रभु को जानकर सब कुछ उसकी आज्ञा में देखके, ईश्वर का भरोसा करके, सत् कर्मों को धारण करके, पाप कर्मों की तरफ भूलकर भी न जाके तथा लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करके ।

प्रश्न 54 : हमारे हिन्दुओं के कितने धर्म हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। समझ नहीं आता किसे मानें।

उत्तर : प्रेमी, ज़रा सोचकर चलो तो झट फ़ैसला हो जाता है। जीव मात्र से प्रेम रखना, किसी का बुरा न सोचना, अपनी आत्मा सबमें जानना ही धर्म है। आत्मा और शरीर के भेद को समझने वाले ही धर्म मार्ग को जानते हैं। जो सब जीवों में अपनी आत्मा को जानकर हर एक की सेवा करने वाला है, किसी को मन–वचन से दुःख नहीं देता, वह ही धर्म के रूप को जानता है।

प्रश्न 55 : महाराज जी, क्या धर्म और राजनीति एक जगह रह सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी, धर्म और राजनीति एक दूसरे से भिन्न न समझो। लेकिन रिवाजक धर्म जो आज का धर्म बना हुआ है और शैतानियत जो आज की राजनीति बनी हुई है, एक नहीं हो सकते। न ही असल राजनीति के साथ रिवाजक धर्म का कोई सम्बन्ध है। रिवाजक धर्म में वही बातें हैं जो किसी प्रकार के पंथ, मत, अदारे, गिरोह के रहन-सहन, रीति-रिवाज, पोशाक, खानपान और देश के चलन पर आधारित हैं। जैसे गिरजाघर जाना, विशेष रूप से परमात्मा की भक्ति करना, नमाज़ पढ़ना, रोजे रखना, चोटी रखना, जनेऊ धारण करना, तिलक लगाना, कड़ा, कंघा, किरपान धारण करना इत्यादि सब रिवाज़क धर्म हैं। उनका वास्तविक धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का सम्बन्ध वास्तव में शान्ति के साथ है। और रिवाज़ का सम्बन्ध शरीर के साथ है। असली धर्म और सही राजनीति एक ही वस्तु है। इसमें किसी भी मज़हब व मिल्लत की दखल नहीं है। यह मानवता का अंग है और मानवता को प्रकट करने वाली और फैलाने वाली नीति है। तमाम जीवों के दुखों को दूर करके उनको राहत पहुंचाना और सारे विश्व को एक कुटुम्ब, परिवार के समान जानकर हरेक से हार्दिक प्रेम करना, अपने स्वार्थों को त्यागकर हर समय दूसरों की भलाई चाहना, यह सब धर्म और राजनीति के एक ही स्वरूप में आ जाते हैं। इस प्रकार की राजनीति जब त्यागी राजा लोग चाहते हैं तो सारे संसार में अमन और शांति फैल जाती है।

प्रश्न 56 : महाराज जी, एक गृहस्थी को कम से कम कितना दान किस रूप में करना चाहिए?

उत्तर : निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसबंद (दस प्रतिशत) धर्म मार्ग में खर्च करना ज़रूरी है। अगर ज्यादा बचत होवे तो पांचवां हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिए, यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से धारण न की जावे तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता है। समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है यानी अनाथ,

अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता में और अन्य जो असूल दान के हैं उनके अनुकूल अपनी कमाई को बरताना हर प्रकार की कल्याण को देने वाला है।

दसबंद का अपने खर्च में इस्तेमाल करना हानि के देने वाला है। यही सत्पुरुषों की नीति है। बल्कि ज्यादा से ज्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयाई है उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुरबानी के जज़्बात धारण करने चाहिए। इसी से धर्म की जागृति और देश में शांति प्रकाश करती है।

प्रश्न 57 : मोक्ष कब प्राप्त होता है?

उत्तर : प्रेमी! जिस समय तेरी बुद्धि संसार से वीतराग होकर जप तप द्वारा आत्म अनुभव करके उसमें लीन हो जावेगी, उस समय मोक्ष की अधिकारी होगी।

प्रश्न 58 : क्या महाराज जी, गंगा नहाने से मुक्ति हो जाती है?

उत्तर : प्रेमी, गंगा नहाने से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति कर्मों से मिलती है। जहां बैठे हो वहां ही गंगा बन सकती है। यह सिर्फ आचार्यों ने खाने के तरीके बनाये हैं। पंडितों के कहने से जान नहीं छूटेगी। करनी भरनी पड़ेगी। प्रेमी, जब पांडव गंगा स्नान करने जा रहे थे तो कृष्ण ने उनको एक तुम्बी दी थी और कहा था इसको भी गंगा स्नान करवा लाना। पांडवों ने ऐसा ही किया। जब वापिस आए तो कृष्ण ने उनसे पूछा, 'क्यों भई, इस तुम्बी को भी स्नान करवा लाये हो?' उन्होंने जवाब दिया, 'हां महाराज, बहुत ज्यादा।'

जब गंगा हवन करने के बाद सब लोग खाने को बैठे तो श्री कृष्ण ने तुम्बी का एक-एक टुकड़ा काटकर सबको दिया और जब खाना खत्म हुआ तो सबसे पूछा, 'क्यों जी, इस तुम्बी का स्वाद कैसा था, कड़वा या मीठा?' तो सबके सब कहने लगे, 'कड़वा'। उस वक्त कृष्ण ने उनसे पूछा, 'क्या आपने इसे नहलाया नहीं? यदि अच्छी तरह नहलाया होता तो ज़रूर इसका स्वाद बदल गया होता।' इसका मतलब यह है कि जब तक

अंतःकरण शुद्ध नहीं होता, पाप वृत्ति कायम रहती है। अपने लाभ के लिए दूसरे की हानि का भाव मौजूद रहता है। जवान में मिठास नहीं, दूसरों से प्रेम नहीं, तब तक एक नहीं, चाहे लाख गंगा स्नान कर लिए जायें, बड़े-बड़े तीर्थों की यात्रा कर ली जावे-सब निरर्थक ही है। इस वास्ते सही कल्याण को प्राप्त करने के लिए अपने आचार-विचार शुद्ध करने चाहिये। सत्पुरुषों से सत् मार्ग प्राप्त करके उनके बताये हुए असूलों और साधनों को अपनाकर ही मुक्ति हो सकती है।

प्रश्न 59 : महाराज जी, मोक्ष का क्या हेतु है? कुछ लोग कहते हैं कि मोक्ष का कारण जीव का अपना प्रयत्न है; दूसरे ईश्वरकृपा को ही मुक्ति का एकमात्र हेतु मानते हैं।

उत्तर : प्रेमी, जब जीव को परम दुःख की प्राप्ति होती है तभी वह समझ पाता है कि यहाँ उसका ठिकाना नहीं है। यह गहरी नाउम्मीदी ही उसमें सच्चे आनन्द की जिज्ञासा उत्पन्न करती है। यही वैराग्य भावना देववृत्ति है। तभी जीव किसी सन्त को सही अर्थों में अपना गुरु मानता है और उसकी सीख को अपनाता है। ऐसे सत् जिज्ञासु को ही मुक्ति प्राप्त होती है।

प्रश्न 60 : महाराज जी, किसी के साथ बुरा बरताव किया जाता है तो उसमें किस पर उसका ज्यादा खराब असर होता है?

उत्तर : प्रेमी जी, बुराई जितना उसका नुकसान (हानि) करती है जो किसी के साथ बुराई करता है, उतना उसका नहीं करती जिसके साथ बुरा बरताव किया जाता है। किसी भी बुराई के करने से पहिले वह अपने अन्तःकरण को बुरा बनाता है जो सबसे बड़ा नुकसान है। मन का बुरा होना ही असल में बड़ा नुकसान है।

प्रश्न 61 : महाराज जी, पाप कर्म करने से विशेष हानि क्या है?

उत्तर : पाप कर्म वासना रूपी आग को प्रज्ज्वलित करने के लिए घी की आहुति का काम करते हैं और वासना की आग का बढ़ना ही मन को महाचंचल बना देता है, यह ही सबसे बड़ी हानि इस जीव को है।

प्रश्न 62 : महाराज जी, सारे विकारों से छूटने के वास्ते कोई सरल सा उपाय बताइये।

उत्तर : तन, मन, धन तीनों को सेवा के मार्ग में लगाने से जीव सारे विकारों से छूटकर अविनाशी खुशी को हासिल कर लेता है। इस वास्ते सेवा ही परम धर्म और कल्याण मार्ग है। जो आदमी सेवा का भाव नहीं रखता वह राक्षस बुद्धि अपनी कामना की खातिर हर वक्त अशांत रहता है। यानी लोभ, मोह, मान, मद, ईर्ष्या आदि अवगुणों में हर वक्त जलता है। यह ही जीवन घोर नरक है किसी पलक भी अपने मन में उदारता नहीं पाता। यह स्वार्थ अंधकार ही काल स्वरूप है। बार-बार जीव को असत् भोगों में भरमाता है। इससे छूटने के वास्ते सेवा रूपी खड़ग अति सुखदाई है। वह मनुष्य कभी असली खुशी हासिल नहीं कर सकता जिसके अन्दर पर का हित और पर की सेवा नहीं।

प्रश्न 63 : यह तृष्णा कैसे शान्त होती है?

उत्तर : प्रेमी, सत्संगों में तृष्णा रूपी रोग से छुटकारा पाने के साधन बतलाए जाते हैं। इनमें ही बतलाया जाता है कि जीव को क्या रोग लगा हुआ है और उसकी दवा दारू क्या है। तृष्णा रूपी रोग ही सब जीवों को लगा हुआ है। राजा, राणा, अमीर, ग़रीब सबको यह रोग सता रहा है। जितने संसार में सुख नज़र आते हैं यह सब दुख रूप समझो। जन्म से लेकर इस समय तक जीव ने जो खाया पिया है वह कहां गया? इस तरह आइन्दा जो जीवन में सुख मिलेंगे वह भी स्वप्न समान हो जावेंगे। इस रोग को समझकर गोपी चन्द, भरतरी जैसे राजाओं ने राज त्यागकर जंगल की राह ली। उनके पास सांसारिक सुखों की कोई कमी न थी। इन्द्रलोक के सब सुख क्यों न प्राप्त हो जाएं, तेरा शरीर भोगों को चार युग क्यों न भोगता रहे तो भी इस जीव को ठंडक नहीं मिल सकेगी। प्रेमी, ईश्वर नाम सिमरण करो तब तृष्णा रूपी रोग से मुक्ति मिलेगी, और इसका कोई इलाज नहीं।

कामना रूपी अगन में, जीव जले दिन रात ।
'मंगत' मारग धरम में, जीव शीतल हो जात ।।

अभिमान को छोड़कर दीनता को धारण करके सत् विश्वास से प्रभु के नाम का सिमरण करो। यह दवाई ही तृष्णा रूपी रोग से निज़ात पाने की है। आत्म तत्व को अनुभव करने की कोशिश करो। अपने सही रक्षक बनो। संसार में वही मूर्ख जीव है जो हर समय हर घड़ी शारीरिक बनाव श्रृंगार और खान-पान में लगा रहता है। बड़े लोगों की तरफ मत देखो। हर वक्त पुरातन सत्पुरुषों के जीवन का विचार करो कि किस तरह वह संसार में विचरे। जिस तरह उन्होंने सद्गति को प्राप्त किया उसी तरह तुम भी चलने की कोशिश करो, तब जाकर तुम्हारा कुछ बन सकेगा।

प्रश्न 64 : मनुष्य में दोनों प्रकार के संस्कार मौजूद रहते हैं। किसी अच्छे संस्कारी जीव को अगर कुसंग मिल जाए या किसी गंदे संस्कारी जीव को अच्छा संग यहाँ प्राप्त हो जाए तो इसके संग-दोष का उन पर क्या असर होता है?

उत्तर : प्रेमी जी, संग-दोष का असर महान् है। संग-दोष करके शुभ या अशुभ संस्कारों को फल लगते हैं। दोनों प्रकार के संस्कार जीव में रहते हुए भी जिस प्रकार का अच्छा या मंदा संग उसको मिलता है उसी प्रकार के संस्कार चेतन हो जाते हैं और दूसरे दब जाते हैं। तुम दूसरी तरह समझ लो कि जैसे सारा शरीर टांगों के बिना चल नहीं सकता, उसी तरह तुम्हारा संस्कार रूपी शरीर बिना संग रूपी टांगों के चल नहीं सकता। यह संग ही है जिसके द्वारा संस्कार जाग्रत होकर प्रकाशित होते हैं। अगर कोई बड़े ही मंदे संस्कारों वाला जीव है और भूला भटका गुणी पुरुष तथा साधुजनों के संग को प्राप्त हो गया तो उसके वे मंद संस्कार दब जाएंगे और जो अच्छे संस्कारों का कुछ-कुछ अंश इसमें मौजूद है जाग्रत होकर इसकी काया पलट देवेंगे। इस प्रकार की बड़ी-बड़ी मिसालें संसार में मौजूद हैं। संग की बहुत महिमा है। यह ही डुबाने वाला और यह ही तारने वाला है।

प्रश्न 65 : महाराज जी, अहिंसा का क्या स्वरूप है?

उत्तर : सब जीवों के साथ प्रेम रखना अहिंसा है। अपने अन्दर भिन्न भेद न रखना, ऐसा विचार करना कि जैसा दुख सुख मुझे महसूस होता

है वैसा ही दुख सुख सब जीवों को भी महसूस होता है इसलिए मैं किसी को दुखी न करूं, ऐसा भाव रखने वाला अहिंसावादी है। राग-द्वेष, लोभ, मोह, अंहकार इन सब पर निगाह रखनी और इन्हें दूर करने वाला अहिंसावादी है।

प्रश्न 66 : महाराज जी, मांस खाने से कौन सी विशेष हानि है?

उत्तर : प्रेमी, मांस खाने से बुद्धि जड़ हो जाती है, बुद्धि की चेतना नष्ट होकर गुस्सा, ग़रूर और क्रूरता के भाव अन्दर आ जाते हैं।

प्रश्न 67 : महाराज जी, त्रिलोकीनाथ का क्या अर्थ है?

उत्तर : प्रेमी, स्थूल शरीर, मन और बुद्धि का स्वामी होने के कारण आत्मा को त्रिलोकीनाथ कहा गया है।

✳✳✳✳

गुरुदेव संबंधी वार्तालाप

प्रश्न 68 : महाराज जी, आप हमेशा रात को बाहर जंगल में जाते हैं। वहां कई भयानक जानवर होते हैं। प्रभु, क्या आपको खौफ़नाक जीव जैसे शेर, सांप से कभी वास्ता पड़ा?

उत्तर : ये तो अपने पास बैठ जाते हैं। गंगोठियां का जिकर है कि यह कुछ जल्दी ही एक रात बाहर चले गये। बादल छाये हुए थे। सो समय का इन्हें ठीक पता न लगा। यह एक शिला पर बैठ गये। जब सुबह उठे तो इनके घुटने के नीचे से सांप उठा और नीचे गिर गया। उसकी भी आंख उस वक्त ही खुली।

प्रश्न 69 : महाराज जी, हम लोगों को तो रात को जंगल में बहुत डर महसूस होता है और खौफ़नाक जानवरों का हर वक्त भय रहता है ।

उत्तर : प्रेमी, हर एक जीव अपनी जगह पर भयभीत है। वही एक आत्मशक्ति हर एक जीव में व्याप्त है। सो जैसा तू किसी जीव के प्रति भाव बनायेगा वैसा ही भाव उसमें पैदा हो जाता है। अगर तू शत्रु समझेगा तो मुकाबला करने के लिए उस जीव में शक्ति खड़ी हो जायेगी और अगर तू इस भाव से बचेगा और ऐसा सोचेगा कि वही आत्म शक्ति जो मुझमें है वह हर एक जीव में है तो कोई जीव भी तेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसी भावना बनायेगा वैसा ही स्वरूप देखेगा।

प्रश्न 70 : महाराज जी, आप पढ़े तो उर्दू हैं; लेकिन वाणी लगभग हिन्दी में ही उच्चारण करते हैं?

उत्तर : मालिक की आज्ञा से जैसा प्रसंग आ रहा है वैसा ही तुम्हारे सामने रखा जा रहा है। जिस समय तुम दोबारा पढ़कर सुनाते हो तो उस समय इन्हें खुद ही आश्चर्य होता है। यह नहीं जानते कि यह प्रसंग किस समय बोला गया था–यह बोलना चाहिए था कि नहीं बोलना चाहिए था। प्रेमी, ये भी मजबूर हैं। उस मालिक का हुक्म बड़ा सख़्त है। जिस तरह

बुलाए उस तरह बोला जायेगा। हमारे बस की बात नहीं है। जीवों के कल्याण के वास्ते अमरलोक से वाणी आई है। देशकाल के मुताबिक दीनदयाल कृपा किया करते हैं। कहो तो संस्कृत या अंग्रेज़ी में भी आ सकती है। लेकिन जैसा प्रवाह आ रहा है वैसा ही तुम्हारे सामने रखा जा रहा है। तुम्हें पसन्द हो तो रखो। यह ही आसान भाषा आगे देश की भाषा होगी। मिलीजुली भाषा आम लोगों के सुधार के वास्ते है। सत्पुरुष जिस देश में होते हैं, उस जगह के लोगों के वास्ते वैसे (उन्हीं की भाषा में) ही उच्चारण फ़र्माया करते हैं। सत्पुरुष हर ज़माने में हर जगह होते आए हैं। यह नहीं कि मुहम्मद के बाद या गुरु अवतारों के बाद बन्दिश हो गई है। न बन्दिश हुई है, न होगी। जब-जब भी जीव नेक उसूलों से पतित होने लगते हैं-रजोगुण-तमोगुण का ज़ोर बढ़ने लगता है- तब कोई अवतारी पुरुष भी आ जाया करता है। बैठे हुए वे चाहे कहीं हों, लेकिन उनकी आवाज़ सारे कुर्रा-हवाई (वायुमण्डल) में फैलकर खुद-बखुद ही सतोगुणी जीवों के अन्दर जज़्ब हो जाती है-और उनके द्वारा भी सब जीवों की भलाई होती है। अब यह समता भाव नये सिरे से प्रकट हुआ है। यह आज इतना असर नहीं करेगा जितना कि दस-बीस, पचास वर्ष के बाद। महापुरुषों द्वारा ही संसार को चेतावनी मिला करती है। जो समता भाव को ग्रहण नहीं करेगा वह क़ौम (समाज) या देश नष्ट हो जायेगा। समता के बिना जो कानून बनाया जाएगा वह सुखदाई नहीं होगा।

प्रश्न 71 : महाराज जी, यह क्या बात है कि आप वाणी उच्चारण करते समय तो लगातार ही उच्चारण करते जाते हैं-मिनटों में कितने ही पद बोल जाते हैं, लेकिन दुरुस्ती (शोधन) के समय ज़रा सी गलती निकालने में दो-तीन मिनट लगा देते हैं।

उत्तर : मालिक की मौज का प्रवाह जब चल रहा होता है, उस समय बुद्धि ग़लत-सही विचार के द्वन्द्व से परे होती है। उस समय बेदारी हालत से ग़लत शब्द उच्चारण नहीं होता। तेरी कलम या बेहोशी ग़लती कर जाती है। उस बेपरवाह हालत का अनुभव वही सत्पुरुष जान सकता है जिसके अन्दर आनन्दमयी मौज जारी है। जब सत्स्वरूप से अलग

बहिर्मुखी होकर विचार होता है, तब ज़ेर (मात्राओं) का विचार आता है। सत्शब्द से लगी हुई बुद्धि के अन्दर अपने-आप आत्म-तत्व के सही विचार उठते हैं। उनको ज़रा भी सोचने के वास्ते कोशिश नहीं करनी पड़ती। अपने-आप ही अमृतवाणी प्रकट होनी शुरू हो जाती है। जैसा भी जिस विचार का संकल्प उठा, उसकी महिमा शुरू होने लग जायेगी-कर्तार की भी और संसार की भी। नई से नई बातों का पता चलता है। लेकिन संसार की मालूमात खेदयुक्त होती है। इस वास्ते उधर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता है। जिस प्रकार तपे हुए हृदय में ठंडक-शांति आवे, वह ही विचार सत्पुरुष प्रकट कर जाते हैं। सबको अपना-अपना सत्विश्वास और श्रद्धा ही इस सत्-अनुराग में उन्नति देने वाली है।

प्रश्न 72 : महाराज, नाद की महिमा गाते समय आपने फ़र्माया है कि उस शब्द की बहुत गर्जना है, करोड़ों सूर्यों से ज़्यादा प्रकाश है। लेकिन पेट में ज़रा सी वायु गड़-गड़ाहट करे तो बाहर सुनाई देती है। दूसरे एक सूर्य की तपन सहन करना कठिन है, तो हज़ारों सूर्यों का प्रकाश और तपन कैसे सहन हो सकती है। शब्द की घोर गर्जना हमें बाहर क्यों नहीं सुनाई देती, जबकि सत्पुरुष फ़र्माते हैं कि रोम-रोम में उसका अनुभव हो रहा है?

उत्तर : बच्चू, यह मन, बुद्धि और इन्द्रियों का विषय नहीं है। बुद्धि उस हालत को अनुभव कर सकती है, ब्यान नहीं कर सकती।

बुद्धि इस तत्त्वमयी शरीर के लगाव से कुछ तपिश, कुछ ठण्डक महसूस करती है। जब उस परमतत्व में लीन हो जाती है, न ठंडक का पता रहता है, न तपिश का। वह परमतत्व तीनों गुणों के दोषों से अलग है। निर्गुण आत्मतत्व को न तपिश तपा सकती है , न हवा सुखा सकती है, न पानी गीला कर सकता है। बाकी उस आवाज़ को शरीर के कोट से बाहर नहीं निकलने दिया जाता। यह सामर्थ्य सत्पुरुषों में ही होती है। उस भेद को वे ही जानते हैं। ऐसा पुरुष हर समय उठते-बैठते, खाते-पीते उस हालत में सरशार (मस्त) रहता है। नींद, आलस और भूख-ये तीनों दोष वाली चीजें शब्द के अनुभव के बाद ख़त्म हो जाती हैं। सिर्फ संसार से बचने के

लिए सत्पुरुष थोड़ी खुराक सूक्ष्म रूप से लेते हैं ताकि शक्ति बनी रहे। यहां बनावटी काम नहीं है।

प्रश्न 73 : एक शंका है। ग़लत ढंग से कहूँ तो क्षमा कीजिए। आप पुरातन सत्पुरुषों का ज़िक्र केवल नाम लेकर ही करते हैं और सब दुनिया पहले 'भगवान', 'गुरु' आदि सम्मानार्थक शब्दों सहित उनका नाम लेती है।

उत्तर : (हँसकर) आत्मस्थिति में वे न इनसे बड़े हैं, न छोटे हैं। तुम भी तो अपने साथियों का पूरा नाम नहीं लेते–उनका आधा नाम ही उच्चारण करते हो। फिर भी वे तुमसे प्रेम बनाये रखते हैं। इसी तरह इनका उनसे सम्बन्ध है। वे सब उस समता धाम के निवासी हैं। तुम फ़िक्र न करो, खाली नाम उच्चारण करने से वे सत्पुरुष इन पर नाराज़ नहीं होंगे।

प्रश्न 74 : महाराज जी, सत् की सूझ जन्म से जीव को होती है। क्या पिछले जन्मों से जीव तप करता हुआ चला आता है और फिर आगे करने लग जाता है?

उत्तर : प्रेमी, यह कोई एक जन्म की साधना थोड़े ही है। मौज और मस्ती जन्म से ही अन्दर थी मगर समझ न आती थी कि यह क्या हालत है। चार बरस की आयु में सत् सार का भेद खुल गया था। बाल अवस्था की वजह से उस हाल में समय गुजरना था। सार–भेद के यौवन की स्थिति की ओर जाने का चित्त में शौक बढ़ने लगा। ऊपर से संसारियों के साथ मिलकर चलना ही उस समय बेहतर समझा और बचा–बचा कर इधर एकान्त में समय देना शुरू हो गया था। फकीरों का संसारियों से मेल क्या?

प्रश्न 75 : महाराज जी, आपने अन्न क्यों छोड़ रखा है? आगे तो हम ग्रन्थों में पढ़ा करते थे, अब प्रत्यक्ष देख रहे हैं। रोटी बिना कैसे रह सकते हैं?

उत्तर : प्रेमी, इन बातों में क्या पड़ा है? तू अपने जीवन के लिए पूछ। यह बड़ी उच्च अवस्था की बात है, तुमको क्या समझ आवेगी?

जप-तप करके जब इस हालत में पहुंचोगे, अपने आप पता लग जावेगा। अब यह क्या कहें? चलने वाली बात करो। मामूली संसार का ग़म (शोक) आ जाए या बहुत खुशी मिल जाए तो भूख-प्यास खत्म हो जाती है। जिनके अन्दर मालिक आप कृपा कर देवे उनको फिर किस चीज की ज़रूरत रहती है? यह भी (थोड़ा सा दूध, चाय जो ग्रहण किया जाता था) मशीन को तेल देने वाली बात है। इधर हिसाब-किताब ग्रहण त्याग का खत्म ही है। समय काट रहे हैं। गुरुमुख जीवों के दर्शन ही इनकी खुराक है।

प्रश्न 76 : क्या आप राम को मानते हैं?

उत्तर : जिसको राम मानते थे या जिसकी बाबत कृष्ण ने गीता में कहा है, यह उस परमेश्वर को मानते हैं।

प्रश्न 77 : महाराज जी, आप फोटो (छायाचित्र) को क्यों नहीं पसन्द करते?

उत्तर : प्रेमी, किसी का स्वरूप, उसका आखों से दिखने वाला वजूद (स्थूल शरीर) पांच तत्वों का बना हुआ होता है। तेरा वास्तविक स्वरूप तेरी ज्ञान निष्ठा है, तेरे भाव और तेरे विचार हैं। इसलिए झूठ वस्तु में अपने स्वरूप को समझना कितनी मूर्खता है। जैसे कोई यदि चोर है तो उसका शरीर तुम्हारे जैसा ही है परन्तु उसकी ज्ञान निष्ठा में और विचारों में जो अन्तर है उस कारण उसको चोर का नाम दे देते हैं। इससे यह साफ है कि हरएक का स्वरूप उसके विचार और उसके भाव हैं न कि उसका पांच तात्विक शरीर, जिसकी तुम फोटो लेते हो। यह फोटो तुमको वास्तविकता से हटाकर नकल की ओर ले जाती है।

प्रश्न 78 : महाराज जी, आपको प्यास नहीं लगती। सुना है आप पानी पीते ही नहीं हैं?

उत्तर : तुम जानते हो कि शिवजी महाराज की जटा से गंगा निकलती दिखलाई गई है, जो कई कोटि जीवों को तृप्त करती रहती है। क्या इनके वास्ते अन्दर बह रही गंगा प्यास नहीं बुझा सकती।

प्रश्न 79 : कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आयु दीर्घ और शरीर अरोग्य होता है? (इशारा आपकी शारीरिक ख़राबी की ओर था जबकि आप बाल ब्रह्मचारी थे)

उत्तर : शरीर तो नित ही रोग रूप है, चाहे संत का है या संसारी का। कल्याणकारी जीवन उन्हीं सत्पुरुषों का जानो जिनकी बुद्धि नित ही ब्रह्म तत्व आत्मा में स्थित है। जिसने शब्द स्वरूप आत्मा में स्थिति पाई है वह ही असली ब्रह्मचारी है।

प्रश्न 80 : महाराज जी, सब महात्मा जन अच्छी तरह गले में हार डलवाते हैं परन्तु आप फूल की भेंट क्यों स्वीकार नहीं करते?

उत्तर : लाल जी, तुम लोग फूल पत्र संतों के आगे रखकर, जल में स्नान से और गऊ माता को आटे का पेड़ा देने से ही छुटकारा चाहते हो, और चाहते हो कि कुछ न करना धरना पड़े। प्रेमी, छुटकारा शरीर भेंट से भी नहीं होता। इनमें कल्याण नहीं, न कोई असलियत है। मड़ियां, कबरें पूज लीं, दरख़्तों के आगे मत्थे रगड़ लिए, साल के बाद या कभी-कभी गंगा स्नान कर लिया और इसी में कल्याण समझ लिया या गाय बच्छी वैतरणी पार करने के लिए दान कर दी, यह सब वहम, तोहमात कहां तक तुम्हारी बुद्धि को निर्मल कर सकते हैं। आंखें खोलो, अब वह ज़माना नहीं रहा। बाल की खाल निकालने वाली नस्लें आ रही हैं। सनातन धर्म यह नहीं है। पुराना सनातन धर्म क्या था, इसका विचार करें। ऋषियों, मुनियों का धर्म था उपकार, निष्काम कर्म, दुखियों की सेवा, हर जीव मात्र में अपनी आत्मा का विचार करना। किसी को मन, वचन, कर्म, करके दुख न देना। सदा एक प्रभु की आराधना करनी। जो कुछ धन, सम्पत्ति, परिवार प्राप्त है, बल्कि अपना शरीर भी, सब प्रभु की दात समझनी। भिन्न भेद से रहित होना। हर पदार्थ, जीव मात्र में उस समस्वरूप परमात्मा को देखना। आज क्या हालत है, चूल्हे दी तेरी तवे दी मेरी, या दगा तेरा आसरा। क्या आहार पवित्र है? व्यवहार में कितनी सफाई, पवित्रता रखी हुई है? प्रेमी, यह फकीर खाली मत्था टिकाने वालों में से नहीं हैं। यह तुम लोगों को समझाने आए हैं।

✳✳✳✳

गुरुदेव का जीवन परिचय एवं संस्मरण

विचारशील मनुष्य के अन्दर ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि यह जीवन क्या है? यह संसार क्या है? दिन–रात की हलचल, दौड़–धूप, सुख–दुःख की झांकियाँ, परिवर्तन और जन्म–मरण का चक्कर यह सब क्या अर्थ रखते हैं? मनुष्य की मानसिक इच्छा क्या है? इच्छा की तृप्ति किस तरह हो सकती है? ईश्वर किसको कहते हैं? उसका स्वरूप क्या है? और उसको कैसे जाना जा सकता है? जीवन के इन प्रारंभिक प्रश्नों पर समय–समय पर आने वाले महापुरुषों ने अपने–अपने ढंग से प्रकाश डाला है। इन महापुरुषों के पवित्र जीवन और अनमोल बचन सदियों तक सांसारिक मनुष्यों को ठंडक पहुंचाते रहे हैं।

सत्य एक है। भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के स्थापकों, अवतारों और महापुरुषों ने उसी सत्य को ब्रह्म, निर्वाण, अल्लाह, एक ओंकार और समता तत्व आदि शब्दों से पुकारा है और उस तत्व को अनुभव करने के लिए जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया है। लेकिन प्रत्येक सुधारक सत्पुरुष ने सत्य की ठीक व्याख्या के अतिरिक्त अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और उस समय की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने के नाना प्रकार के यत्न बतलाए हैं । परन्तु ज्यों–ज्यों समय बीतता है क्रियात्मक जीवन से हीन और स्वार्थी लोगों के द्वारा यह शिक्षा विकृत हो जाती है। जीवन के बाहरी या दिखावटी ढंग के आधार पर पक्षपात आ जाता है, धर्म का ग़लत रूप सामने रखा जाता है और इस कारण सामाजिक ढांचा कमज़ोर हो जाता है। धर्म तथा महापुरुषों के नाम की आड़ में राक्षस–वृत्ति लोग भोली–भाली जनता को धोखा देते हैं और अपनी नीच वासनाओं को पूर्ण करने के लिए जनता का शोषण करते हैं। इससे अंत में उपद्रव पैदा होते हैं तथा संसार में क्लेश का वातावरण निर्मित हो जाता है। जब–जब इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होती है और जनता को इससे बचने का कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता तब–तब महापुरुष इस संसार में आकर जनता को सही मार्ग दिखलाते हैं जैसा कि महापुरुषों का कथन है: "जब–जब धर्म की हानि और अधर्म

की वृद्धि होती है, तब–तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ। (गीता)

"जब समता धर्म का प्रकाश अलोप हो जाता है उस वक्त फिर सत्पुरुष आकर अमली ज़िन्दगी द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं।" (समता विलास)

सत्पुरुष महात्मा मंगतराम का जन्म इन्हीं परिस्थितियों में रावलपिंडी ज़िले के गंगोठियाँ नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में 24 नवम्बर, 1903 को हुआ था। इनका बचपन और यौवन इसी स्थान में गुज़रे। इसकी घाटियों और जंगलों में आपने अपने दिन काटे तथा रातें बिता दीं । भूख, प्यास और नींद से बेसुध होकर, अपने शरीर से बेखवर र२हकर घने पेड़ों की छाया में आपने उम्र काट दी। चाहे आंधी हो तूफ़ान, चाहे अंधेरी रातें हों या चांदनी–उनकी रातें एकान्त जंगलों में ही बीतती रहीं। आगे–पीछे की चिन्ता से मुक्त होकर वे अपने आप में ही मस्त रहे। जीव–जन्तु भी अपने बिल बना लेते हैं, पक्षियों के भी नीड़ होते हैं, लेकिन इस ईश्वर के प्यारे ने आकाश को ही अपनी छत बना लिया था और धरती ही उसका बिछौना थी। किसी ने भी उन्हें सोचते नहीं देखा कि वह क्या खाएंगे और क्या पहनेंगे।

इनके पिता का नाम पं० गौरी शंकर और माता का नाम श्रीमती गणेशी देवी था। पिता रावलपिंडी के सुप्रसिद्ध धनिक सरदार सुजान सिंह के कारमुख़्तार थे। सत्य, अपरिग्रह और पूजा–पाठ ही इनके माता–पिता की वास्तविक सम्पत्ति थी। इनके दादा पं० सुन्दरदास जी तो सही अर्थ में संत थे। उनके जीवन का एक बड़ा भाग काश्मीर के घने जंगलों में तपस्या करते बीता। चार वर्ष की अवस्था में मंगत राम जी के पिता का देहान्त हो गया। मरने से पहले उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रों से कहा था, "मंगत का भविष्य महान होगा।" पं० गौरीशंकर जी ज्योतिष विद्या के ज्ञाता थे।

बालक मंगत में शिशु–सुलभ चंचलता का अभाव था। आप न चीखते–चिल्लाते थे और न ही हंसते–खेलते। चार–पांच वर्ष की आयु में

ही आप आधी रात्री के समय जब माँ सो जाती तो उठकर चारपाई पर बैठ जाते और ध्यान मग्न हो जाते। पांच वर्ष की आयु में स्कूल जाना प्रारंभ किया। एक दिन माँ ने नया कोट पहनाया। शाम को लौटने पर माँ देखती हैं कि स्वयं तो फटा कोट पहने हैं और अपना कोट किसी को दे दिया। इसी प्रकार अपना सामान और अच्छा भोजन तो स्कूल में ग़रीब बच्चों को दे दिया करते और उनकी सूखी रोटी खाकर स्वयं पलते रहे।

जब आप सातवीं कक्षा में थे तब आपने चालीस दिन का कठिन तप किया। पढ़ाई की तरफ से आपका ध्यान हट चुका था, अधिकतर समय ईश्वर चिंतन में ही व्यतीत होता था परन्तु फिर भी कक्षा में प्रथम आते थे। सन् 1916 के अन्तिम दिन थे। उस समय उनकी आयु 13 वर्ष की थी। एक रात ईश्वर याद में तल्लीन थे कि अचानक अन्तर में कोटि-कोटि सूर्य के समान रोशनी का अनुभव होने लगा। छत्तीसों प्रकार के राग-रागनियां सुनाई पड़ने लगीं। पल-पल में अनेक रूपों का अनुभव होने लगा। बाहर की कोई सुध न रही। इस प्रकार 13 वर्ष की आयु में योग-मार्ग का गुप्त रहस्य खुल गया तथा ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। इस रात्री के तीसरे दिन घर के पास पीर ख़्वाजा के जंगल में (यह जंगल इतना भयानक था कि दिन में भी लोग वहाँ जाने से डरते थे) जब ईश्वर ध्यान में मस्त थे तो अन्दर से 'ओ३म् ब्रह्म सत्यम्' शब्द प्रकट हुए। दूसरे दिन 'निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा' और तीसरे दिन 'सर्वव्यापक कल्याण मूरत परमेश्वराए नमस्तं' प्रकट हुए। इस प्रकार ईश्वर का पूर्ण स्वरूप सत्पुरुष के मुख से बाल अवस्था में निम्न महामंत्र के रूप में प्रकट हुआ, जिसका वर्णन वाणी में ग्रंथ श्री समता प्रकाश में किया गया है:

'ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरखा सर्व व्यापक कल्याण - मूरत परमेश्वराए नमस्तं'

ईश्वर की अपार महिमा का अनुभव होने के पश्चात् सांसारिक जीवन तथा स्कूल की पढ़ाई उनके लिए निरर्थक थी। परन्तु माँ के कारण घर नहीं छोड़ा। जब आठवीं कक्षा में थे, एक दिन अंग्रेज इंस्पेक्टर स्कूल

का इन्सपेक्शन करने आए। कक्षा में आकर प्रश्न किया, सेवा का क्या अर्थ है? सेवा किसकी करनी चाहिए और इससे क्या फल मिलता है? कक्षा में मंगत के अलावा किसी का हाथ न उठा। पूछने पर उन्होंने उठकर इन्सपेक्टर को पहले नमस्कार किया फिर बोले, "दुनिया की हर वस्तु सेवा कर रही है- सेवा करने के लिए ही पैदा हुई है। लेकिन इन्सान ग़रज़ रखकर सेवा करता है। ग़रज़ रखकर ही परिवार की, खानदान की, मित्रों की पीरों-फकीरों और देश की सेवा करता है। ग़रज़ रखता हुआ ईश्वर-खुदा की भी सेवा-यानी दान-पुण्यादि करता है। बिना स्वार्थ के इन्सान मुश्किल से ही किसी की सेवा करता है। सबसे बड़ा कर्त्तव्य निष्काम सेवा है। ईसा, मोहम्मद, राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक आदि ने ईश्वर की याद और जीव मात्र की सेवा करने पर ही ज़ोर दिया है।

''अपने से बड़े बुज़ुर्गों-माता-पिता, अध्यापक, गुरु आदि की सेवा करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। उसके बाद सम्बन्धियों और मित्रों की और फिर गाँव-शहर वालों की, देश की और सारे संसार की।''

"गर्ज़ वाली सेवा से दुनिया के सुख मिलते हैं, निष्काम सेवा से निष्काम सुख मिलते हैं जो कभी भी समाप्त नहीं होते। ईश्वर हम सबको नफ़रत से परे रखता हुआ हर एक जीव की सेवा करने की अकल प्रदान करे जिससे उसके पास पहुँचने का रास्ता मिलता है। सच्ची सेवा उस खुदा की सेवा करना है।"

इतना कहकर आप बैठ गए। इन्सपेक्टर सुनते रह गए। शाम को हैडमास्टर ने घर पर बुलाकर कहा कि वे चाहते हैं कि मंगत एम०ए० तक पढ़ें। आपने विनम्रता से कहा, आपकी वड़ी मेहरवानी है। अन्दर की हालत आपको समझायी नहीं जा सकती। यह मजबूर हैं। परीक्षा में प्रथम आए। हैडमास्टर ने आगे पढ़ने के लिए फिर कहा तो कहने लगे, "संसारी पढ़ाई काफ़ी पढ़ ली है। इनका मुद्दा पूरा हो जाएगा। असली तालीम को पूरा करना है जिसके लिए संसार में आना हुआ है।"

पढ़ना अक्षर एक का, और सकल है जाल ।
जाँ पढ़ने दुर्मत गयी, परगट भये दयाल ।।

वक्त जात है बाबरे, रस्ता है बहु दूर ।
अटपट औखद घाट है, चढ़ कर होवें मनूर ।।

पढ़ना एको नाम का, और पढ़न दे त्याग ।
'मंगत' निश्चल चित्त होवे, प्रेम हरी रस लाग ।।

इसके पश्चात् स्कूल जाना बंद कर दिया। अब सारा समय ईश्वर आराधना में ही व्यतीत होने लगा। धीरे-धीरे गाँव में बात फैलने लगी। लोग मंगत जी तथा पीर जी कहकर पुकारने लगे। परन्तु माँ की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। इस प्रकार पाँच वर्ष और बीत गए। माँ तथा सम्बन्धियों के बहुत आग्रह करने पर एम०ई०एस० के दफ्तर में पेशावर में नौकरी कर ली। वहाँ आपके जीवन का प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा। जब छुट्टी मिलती ज्ञान चर्चा प्रारंभ हो जाती।

राख से ढकी आग भी कभी न कभी चमक उठती है। एक दिन की बात है कि प्रहलाद के जीवन की घटनाओं के संबंध में बहस छिड़ गई। दफ्तर के कुछ साथी छुट्टी के दिन प्रेम वश आपसे ईश्वर चर्चा में तल्लीन थे। कुछ कहने लगे कि प्रहलाद जलते लौह-स्तम्भ से चिपटकर कभी नहीं बच सकता था। ये बातें सब मन-गढ़न्त कहानियाँ हैं। आपने उनकी बात सुनकर कहा, "प्रभु भक्त जानबूझ कर कोई चमत्कार नहीं दिखाते। न ही किसी तरह का प्रभाव डालने के लिए ऐसा करते हैं। सहज स्वभाव ही या कभी परीक्षा में पड़ जाते हैं, तो प्रकृति स्वयं ही उनकी सहायता हाज़िर होकर करती है।"

वहाँ उपस्थित कुछ सज्जन सत्पुरुष के इन विचारों से सहमत न हुए। एक ने कहा कि न तो आजकल ऐसा भक्त है और न ही कोई ऐसा

चमत्कार हो सकता है। इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "अगर आपके सामने ऐसी घटना हो भी जाए तो भी आपको सत्विश्वास नहीं आएगा। सिवाय वाह-वाह के कुछ हाथ न लगेगा।" जहाँ यह बात हो रही थी उसके पास ही एक तन्दूर जल रहा था। एक साथी ने कहा, "क्या इस तन्दूर में हाथ या पैर डालो तो जलेगा नहीं? ऐसा कभी नहीं हो सकता। आग में पैर डालो तो सारी भक्ति बाहर निकल आये। यह सब गप्पबाज़ी है। हुआ कुछ होता है, लिख कुछ देते हैं।"

अभी यह बात चल ही रही थी कि सबने देखा कि मंगत राम जी का एक पैर तन्दूर में है। सब लोग घबरा गए। एक साथी ने दौड़कर पैर तन्दूर से निकाला। देखा तो एक बाल भी न जला था। सब सज्जन चरणों में गिर पड़े और क्षमा मांगने लगे। अभी तक उनका मंगत राम जी के प्रति मित्र भाव था, लेकिन इस घटना के पश्चात् यह उनसे बहुत दूर हो गए थे। उनकी वह हालत देखकर सत्पुरुष उनसे बोले, "प्रेमियों! बहुत हठ न किया करो। अपने बुजुर्गों के जीवन से कुछ सीखो। बीती हुई बातों को महज़ गप्प समझकर न उड़ा दिया करो। इस घटना की बाबत किसी से कुछ न कहना। प्रभु आज्ञा से ऐसा ही होना था। शायद तुम्हारा विश्वास इसी तरह दृढ़ हो जाए।"

इस घटना के पश्चात् किसी आदमी की आपसे विवाद करने की हिम्मत न हुई। मना करने के बाद भी इस चमत्कार की बात फैलने से न रही। शहर से अनेक लोग उनसे मिलने आने लगे। चमत्कार का यह प्रभाव उनके लिए मुसीबत बन गया। इस कारण उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया। कुछ दिन पश्चात् माँ तथा सम्बन्धियों के कहने पर हथकरघे का काम शुरू कर दिया परन्तु ईश्वर प्रेम के सामने यह संसारी धन्धा चौपट हो गया।

आपके दिन और रात वैसे ही पीर-ख़्वाजा के वन में या ऊँची-नीची घाटियों में बहती तरेल नदी के किनारे कटने लगे। दिन बीते

और रातें बीतीं, पक्ष बीते, मास बीते, ऋतुएं आ आकर लौट गईं। कभी अंधेरी रातें आतीं, कभी चांदनी छिटक जाती। कभी बारिश आती–आंधी और तूफान आते लेकिन इस फ़कीर का नियम न बदलता। दुनियां से सब सम्बन्ध टूट चुका था। परन्तु माँ के कारण घर से जुड़े हुए थे। माँ ने कहा, "मंगत, कुछ करो बेटा। ऐसे कैसे निभेगा?" उत्तर दिया, ''माँ! चिन्ता मत करो, आपके लिए कुछ न कुछ किया जाएगा। जब तक आप हैं, घर में ही रहेंगे।''

कुदरत का करना, आपका ध्यान सहज में ही जड़ी–बूटियों की ओर जाने लगा। धीरे–धीरे रोगियों का इलाज प्रारंभ कर दिया। देखने में हिकमत का कार्य जीविका का साधन था, लेकिन वास्तव में यह उनकी उत्कृष्ट साधना थी, समभाव की प्राप्ति के लिए, संसार और आत्मा को एक रूप देखने के लिए। अत्यधिक सेवा भाव तथा प्रेम के कारण हिकमत खूब चलने लगी। इसको देखकर माँ ने विवाह का प्रस्ताव इनके सामने रखा। इस पर इन्होंने कहा, "तेरी सेवा की खातिर यहाँ हैं। ज्यादा तंग किया तो छोड़ कर कहीं चले जाएंगे।" उस दिन के बाद माँ ने शादी के लिए न कहा। मार्च सन् 1929 मो माता परलोक सिधार गई।

माता के देहावसान के बाद आप अधिकतर समय एकांत में तथा धर्म प्रचार में बिताने लगे। खाना–पीना घटता जा रहा था। दिन में केवल दो तोले आटे की एक चपाती छाछ में पके साग से ग्रहण की जाती थी। अर्थात् महीने में केवल तीन पाव आटा खाते थे। हिकमत से जो पैसा आता था उससे समाज में सेवा भाव जागृत करने के लिए वार्षिक यज्ञ प्रारंभ कर दिया। जिसमें अन्न तथा विचारों की सेवा होती थी। धीरे–धीरे हिकमत का कार्य भी 1935 में समाप्त हो गया। अब महात्मा मंगत राम जी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के वास्ते अहमदाबाद, इन्दौर, बम्बई, काशी, हरिद्वार और लाहौर की यात्रा पर निकले। इनके एक शिष्य महन्त रत्नदास जी, जो कि अहमदाबाद में कबीर गद्दी के महंत थे, ने पहली बार उनके द्वारा उच्चारित 'योगचिन्तामणि वाणी' लिपिबद्ध की। इस यात्रा के पश्चात्

आपका अधिकतर समय घोर तप में व्यतीत होता रहा। काश्मीर के जंगलों तथा पहाड़ों पर काफी समय व्यतीत किया। उनके एक अन्य शिष्य भगत बनारसी दास जी ने, जो कि अंत समय तक उनके साथ रहे, तप के दौरान अंधेरी तथा बर्फीली रातों में जंगलों में बैठकर सत्पुरुष के मुख से निकली अमर वाणी को लिखा। धर्म के प्रत्येक पहलू पर वाणी प्रवाहित हुई। यह सम्पूर्ण वाणी ग्रंथ श्री समता प्रकाश में संग्रहीत है। देश के बंटवारे के पश्चात् आप भारत में आ गए। बंटवारे के संबंध में आपने 16 जनवरी, 1949 को काहनूवान में कहा था–"जिन मुसीबतों को तुमने देखा है, वे नई नहीं हैं। पहले भी ऐसा होता आया है। ऐसी घटनाएँ शिक्षा देने वाली होती हैं। संसार में सिवाय अशांति के कुछ नहीं। स्वार्थी लोग सदा से ऐसा करते आए हैं। पिछली लापरवाहियों ने यह समय दिखाया है। अब भी समय है आपस में अधिक से अधिक प्रेम पैदा करो। धर्म को समझो और धारण करो। अपना आहार, व्यवहार, आचार और संगत शुद्ध करो। भ्रष्टाचार, माँस और शराब की ही यह कृपा है। यह आहार बुद्धि को जड़ बना देता है और ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि आपस में मिलकर बैठना असम्भव हो जाता है। इस कारण न सही सत्संग किसी से बन सकता है, न सही विचार। भ्रष्ट आहार और व्यवहार से विचार भ्रष्ट हो जाते हैं और आचार गिर जाता है। आपस में कट–कटकर मरने की लोग सोचने लगते हैं। खान–पान पहनावे और विचार की सादगी जब तक नहीं होती, तब तक विचारों की एकता कभी नहीं हो सकती। ईश्वर सबको आपस में प्रेम बख्शें।"

इन विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने उस समय की अशांति को देखकर यह नतीजा निकाला था कि देश में ग़रीबी, दुःख तथा क्लेश का कारण चरित्रहीनता है। इसलिए उन्होंने देश की बिगड़ी हुई हालत को देखकर योग मार्ग की शिक्षा पर अधिक ध्यान न देकर शुद्ध आचरण और सदाचारी जीवन पर अत्यधिक ज़ोर दिया तथा उत्तरी भारत में जगह–जगह घूमकर सदाचारी जीवन बनाने के लिए निम्नलिखित पांच नियमों को पालन करने की प्रेरणा दी।

1 सादगी 2 सत्य 3 सेवा 4 सत्संग और 5 सत् स्मरण

इन नियमों को अपनाने से व्यक्ति तथा देश कैसे प्रगति कर सकता है तथा इनका यथार्थ स्वरूप क्या है, इसके बारे में उन्होंने केवल देश वासियों के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए लिखित रूप में ज्ञान हमको दिया है। यह सभी विचार समता विलास नामक ग्रन्थ में संग्रहीत हैं। इस ग्रंथ में सम्पूर्ण वैदिक दर्शन के गूढ़तम सूत्रों का सरल शब्दों में वर्णन है जिनको पढ़कर धर्म को व्यवहारिक जीवन से जोड़ने में प्रत्येक मानव सफल हो सकता है तथा अंधविश्वासों से छुटकारा प्राप्त कर सकता है। पूर्ण सिद्ध पुरुष होने के पश्चात् भी वह सुधारक के रूप में समाज के सामने आए। देश तथा व्यक्ति सुधार के प्रति वे कितने समर्पित थे, यह उनके शिष्यों से हुई निम्न वार्ता से पता लगता है।

"प्रेमियों, तुम्हारे अन्दर यह पर-उपकार और देश-सेवा की तड़प चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर दुखियों के दुःख का अहसास चाहते हैं, तुम्हारे अन्दर एकता और सत्संग चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर अपने प्राचीन बुजुर्गों का आदर्श चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर ईश्वर-भक्ति और ईश्वर परायण जीवन चाहते हैं। क्या तुम प्रेमी सच्चे अधिकारी हमारी इस प्यास को पूर्ण करोगे?"

इस भाव को साकार रूप देने के लिए तथा देशवासियों का सदाचारी जीवन बनाने के लिए उन्होंने जगाधरी में समता योग आश्रम तथा संगत समतावाद की स्थापना की।

परम पूज्य महात्मा मंगतराम जी महाराज इस काल की पावन विभूतियों में से एक थे। गत चार फरवरी, 1954 ई० को यह नश्वर शरीर त्यागकर परिनिर्वाण स्थिति प्राप्त की। यह फकीर अपने ढंग की अजीबोगरीब हस्ती था। देखने में दुबला पतला, बड़ा ही साधारण शरीर और इनकी वेश भूषा में केवल एक बटन का कुर्त्ता खादी का, कमर में तहमद की तरह बाँधी हुई मोटी धोती, सिर पर श्वेत रंग की मामूली सी

पगड़ी तथा एक खादी की चादर ही रहती थी। पंजाब की सर्दी बड़ी कड़ी होती है परन्तु वह इस कठोर मौसम में भी केवल एक साधारण सी गरम चादर के सिवाय और कुछ न रखते थे। जहाँ भी कहीं हमने उन्हें देखा सुबह 7 बजे से लेकर रात्रि के दस बजे तक लोगों से उन्हें घिरा ही पाया। हाज़िर जवाब वह ऐसे थे कि किसी ने कैसा ही जटिल से जटिल प्रश्न किया नहीं कि दूसरे क्षण संक्षिप्त में उसका उत्तर तैयार मिलता था। कभी-कभी देखने वाले हैरान हो जाते थे कि यह इतने बड़े ज्ञान का स्रोत इस नाचीज़ से शरीर में कैसे निवास करता है। उनके हर प्रश्न के उत्तर सदैव युक्तियुक्त और बड़े संक्षिप्त तथा आसानी से समझने वाले होते थे। ऐसी निर्भीक स्थिति में वह रहते थे कि डर नाम की वस्तु उनके पास थी ही नहीं, बल्कि कभी कभी वह ऐसा कहते सुने गये "चाहे सूरज अपनी तपिश छोड़ दे और चाँद अपनी शीतलता त्याग दे और चाहे संसार इनके मुखालिफ (विरुद्ध) हो जावे और चाहे किसी को मंदी लगे या चंघी (अच्छी) पर यह (स्वयं) तो खरी गल (सही बात) आखनी (कहनी) कभी नहीं छोड़ेंगे।" सहृदय ऐसे थे कि जो एक बार उनके पास पहुँच गया वह उनके प्रेम पाश में ऐसा जकड़ जाता था जैसे कोई जादू कर दिया हो।

अब कुछ ऐसे संस्मरण दिये जा रहे हैं जिससे सत्पुरुष का व्यक्तित्व सही रूप से जनता के समक्ष आए। वे कहा करते थे कि जो यह वचन कहते हैं इनको अक्षरशः इनके जीवन पर घटा कर देख लो।

(अ) गुरुदेव का अटूट इन्द्रिय संयम

नवम्बर मास 1953 में गुरुदेव अम्बाला शहर एक महीने के लिए पधारे। एक दिन की घटना है कि गुरुदेव के दरबार में केले का प्रशाद बहुत मात्रा में आया। उस ढेर को देखकर गुरुदेव ने फरमाया कि - यह फल बहुतायत में इनके दरबार में आता है परन्तु इस फल का स्वाद तक इन्होंने नहीं देखा।

इसी प्रकार एक दिन धनाढ्य दम्पति रेवड़ी, काजू मिले हुए, का एक डिब्बा गुरुदेव के सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि महाराज जी थोड़ा सा आप इसमें से अवश्य ग्रहण करें।

गुरुदेव ने फरमाया, "यह तो ऐसा आहार लेते नहीं, संगत में इस प्रशाद को बाँट दो।" उन दोनों दम्पति ने कहा "हमारी हाथ जोड़कर विनम्र प्रार्थना है कि आप इसे अवश्य थोड़ा ग्रहण करें।" उनके बार-बार आग्रह करने पर गुरुदेव ने कृपा कर उस डिब्बे से एक रेवड़ी उठाई और उसमें से एक तिल निकालकर जबान पर रख लिया और रेवड़ी वहीं डिब्बे में रख दी। तब उन्होंने फरमाया, "प्रेमियों तिल लिया है मन देना पड़ेगा।"

एक बार श्री गुरुदेव आगरा पधारे। वहाँ प्रेमियों ने आग्रह किया, महाराज जी, कार बाहर खड़ी है। कृपा करके ताजमहल देखने चलिए। उस समय गुरुदेव ने फरमाया, "सबसे खूबसूरत ताजमहल से बढ़िया चीज़ इनके अन्दर है जिसका यह हर समय दीदार (दर्शन) करते रहते हैं।"

इसी प्रकार जब श्री गुरुदेव जी श्रीनगर पधारे, वहाँ श्री दीनानाथ जी सराफ कार ले आये और प्रार्थना की कि महाराज जी आज आपको श्रीनगर का म्यूज़ियम दिखाने ले चलते हैं। श्री गुरुदेव ने उनसे पूछा, "उस म्यूज़ियम में क्या विशेष बात है?"

प्रेमी जी ने फरमाया कि वह बड़ी अजीब व गरीब वस्तुओं का संग्रहालय है। देखने लायक है।

इस पर श्री गुरुदेव ने प्रेमी जी को आदेश दिया कि जाओ, सामने उस वृक्ष का पत्ता तोड़कर लाओ।

प्रेमी ने आदेश का पालन किया और जब वह पत्ता श्री महाराज के सम्मुख रखा तो आपने फरमाया कि यह पत्ता कितना खूबसूरत है और मेरे मालिक ने कितनी सुन्दर चित्रकारी इसमें की है जो देखते ही बनता है। प्रेमी जी ने श्री महाराज जी की बात स्वीकार की और खामोश हो गये।

इसी प्रकार की अनेकों घटनाएँ हैं। सत्पुरुष महात्मा मंगतराम जी का इन्द्रिय संयम अटूट था। 'श्री समता प्रकाश' ग्रन्थ में आपने फरमाया है:

इन्द्री भोग में उपरसता भाखे।
धीरज धर्म अन्तर रस चाखे।।

इन्द्री भोग से रहे अतीत ।
आतम भोगे सो गुरु पुनीत।।

क्षमाशीलता

श्री गुरुमहाराज जी अपने कातिलों को क्षमा करते हैं। मानव स्वभाव भी अजीब है। मनुष्य दूसरे के वैभव से ही नहीं, उसके तप और त्याग से भी ईर्ष्या करने लग जाता है। धर्मान्धिता आ मिले तो मनुष्य में बसा पशु हर सीमा का उलंघन कर जाता है। मटोर के पीर बहुत प्रसिद्ध थे। उस इलाके की मुसलमान जनता उन्हें बहुत मानती थी। ये पीर इतने धर्मांध थे कि किसी भी हिन्दू सन्त का उस इलाके में जाना सहन न करते थे। जो भी हिन्दू संत भूला-भटका उधर आ जाता, उसे अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते थे। मटोर की पहाड़ी पर गुरुदेव तप के लिए ठहरे हुए थे। जब इन पीरों ने गुरुदेव की बढ़ती हुई ख्याति सुनी तो ईर्ष्या की आग में जलने लगे। उन्होंने गुरुदेव को भी मरवा डालने का निश्चय किया। एक शाम सात आदमी कुल्हाड़ियाँ लेकर पहाड़ की ओर बढ़े। आगे की घटना का विस्तृत ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। स्वयं गुरुदेव ने ही एक प्रेमी के सामने इसका इशारा भर किया था। आपने कहा था, "जब वे लोग इनके निकट पहुँचे और कोई आठ फुट का फासला रह गया तो उन्हें लगा कि अगर एक भी कदम आगे बढ़ाया तो काल के मुख में चले जायेंगे। उन्होंने आगे बढ़ने की बहुत कोशिश की, लेकिन ऐसा न कर सके। आखिर मज़बूर होकर वापिस चले गये। तीन दिन वे लगातार इनको खत्म करने के लिए आए, लेकिन वही दशा उनकी हुई।"

तीन दिन के अनुभव ने उन हत्यारों के मन में भय उत्पन्न कर दिया। उन्होंने अपने पीरों को सारी घटना कह सुनाई। उन्हें भी घबराहट

हुई। प्रायः निर्दयी भय से अपने पाप के प्रति जागरूक होते हैं। वे कहने लगे, "यह कोई सच्चा फ़कीर है। हमने बहुत बड़ा गुनाह किया है।" वे उन हत्यारों के साथ गुरुदेव के पास पहुंचे। चरणों में सिजदा किया और कहने लगे, "साँई जी, हमने बहुत बड़ा गुनाह किया है। इसलिए आपके कदमों में हाज़िर हुए हैं। अपने रहमोकरम से गुनाहगारों को बख्शों।"

गुरुदेव बोले, "प्रेमियों, आपने तो कोई गुनाह नहीं किया, जिसके लिए फकीर तुम्हें बख्श दें।" उन लोगों ने तब पिछले तीन दिनों की कहानी सुनाई और फिर क्षमा याचना करने लगे। सुनकर गुरुदेव बोले, "प्रेमियों, ये तो सबको एक दृष्टि से देखते हैं। सबको अपना ही रूप समझते हैं।"

पीर बोले, ''पीर जी, इतना भारी गुनाह बेसमझी से हुआ है, आगे ऐसी गल्ती न होगी।''

गुरुदेव : क्या कुरान शरीफ में यही लिखा है जो तुम करते हो?

पीर : ऐसा कुछ नहीं लिखा। यह हमारी ही गल्ती है।

गुरुदेव : जो कुरान शरीफ में लिखा है उसके मुताबिक चलो। वही एक ज़ात (आत्मा) सबमें है। इसलिए भेदभाव बिल्कुल न रखो। सबको एक नज़र से देखो और सबका भला चाहो।

पीर और उनके अनुयायी चरणों में गिर पड़े। मन की मैल धुल गई। पाकिस्तान बनने तक वे लोग हर वर्ष गंगोठियां में यज्ञ में सम्मिलित होते रहे। बाद में एक अन्य प्रेमी ने गुरुदेव से प्रश्न किया, "महाराज जी, जब वे लोग आपकी हत्या करने के विचार से आते थे, तो क्या आप भयानक रूप धारण कर लेते थे?''

गुरुदेव ने उत्तर दिया, ''नहीं प्रेमी! फक़ीर लोग कुछ नहीं करते। वे तो ब्राह्मी स्थिति में मग्न रहते हैं। लेकिन उनके अन्दर से एक करन्ट सी

निकलती रहती है जो अशुद्ध भावना वाले मनुष्यों पर ऐसा असर करती है कि उनका मन ही उनके सामने उनकी अशुद्ध भावना के मुताबिक शक्लें खड़ी कर देता है।"

निर्मानता का आदर्श

(क) मार्च 1938 में घर से बाहर विचरने के प्रोग्राम के अन्तर्गत आप गंगोठिया से चलकर रावलपिंडी आए और वहाँ रियासत पूँछ की तरफ जाने का निश्चय किया। इसलिए कोहाला जाने के लिए बस अड्डे पर पहुँचे और टिकट लेकर बस में फ्रंट सीट पर बैठ गए। आपका पहनावा तो साधारण व्यक्ति जैसा था। साधु संत होने की कोई निशानी न थी। आपके बाद जो सवारी आती वह आपसे पिछली सीट पर जाने के लिए कहती और आप बिना एतराज़ किए सीट बदलते जा रहे थे। इस प्रकार आपको कई बार सीट बदलनी पड़ी। उसी बस में एक प्रेमी लाला कर्मचन्द जी बैठे थे और वे ये सब माजरा देख रहे थे। वे हैरान थे कि यह कैसा व्यक्ति है जो दूसरों के कहने पर फौरन सीट बदल लेता है। उनको लोगों द्वारा एक भले आदमी को बार-बार सीट बदलने पर मजबूर करना पसन्द न आया और उन्होंने आने वाली सवारियों से इस वर्ताव को बंद करने के लिए कहा। परन्तु उस समय गुरुदेव ने, जो निर्मानता के आदर्श थे, फरमाया:-

"प्रेमी, आपको इनसे झगड़ने की कोई जरूरत नहीं, हमें तो लारी में बैठना है। कोई आगे पीछे की बात नहीं।"

इस निर्मानता और सहनशीलता का प्रभाव प्रेमी कर्मचन्द जी पर बहुत पड़ा। वह आपकी उच्च हस्ती को कुछ-कुछ पहचान गये। कोहाला पहुँचने पर श्री कर्मचन्द जी महाराज जी को अपने घर ले गये।

(ख) जो श्रद्धालु अथवा जिज्ञासु आपके पास आता था, उसके झुकने और प्रणाम करने से पहले ही आप दोनों हाथ जोड़कर धरती को छूकर हाथ ऊपर करते थे। मानो उन्हें स्वयं प्रणाम कर रहे हों। जब किसी ने पूछा कि गुरुदेव! आप ऐसा क्यों करते हैं? तो आपका उत्तर था-कि ये (स्वयं) सबमें भगवान को देखते हैं।

गुरुदेव की विनम्रता

गुरुदेव प्रत्येक व्यक्ति को स्नेह की दृष्टि से देखते थे, इसे चाहे गुरुदेव की विनम्रता कहिए या कृपालुता, यही नहीं वे आदर से बुलाते और सत्कार देते थे। कोई साधु या सन्यासी भी आ जाता तो कई बार अपने नीचे से आसन निकालकर उसे बैठने के लिए आमन्त्रित करते।

वर्ष 1951 में जब गुरुदेव अबोहर में बिराजमान थे तो एक प्रेमी प्रणामी मत के महात्मा को साथ लाए थे। वह महात्मा बड़े विद्वान थे और शिष्यों की ओर से उनकी बड़ी पूजा और मान प्रतिष्ठा होती थी। जैसे ही वे निकट पहुँचे, गुरुदेव ने अपने नीचे बिछा हुआ आसन निकाला और उस पर बैठने की प्रार्थना की। प्रणामी महात्मा कुछ आश्चर्यचकित हो गये और फरमाने लगे, "सोचकर तो बहुत कुछ आए थे, न मालूम सब विचार कहाँ चले गए। आपने तत्काल अपने नीचे से आसन निकालकर बैठने के लिए देकर मोहित कर लिया है। आप तो सब मतों के सिद्धान्तों के सार अनुभव स्वरूप में स्वयं विराजमान हैं। आज तक किसी महात्मा के अन्दर इतनी विनम्रता नहीं देखी, दर्शन करके चित्त शान्त हो गया है।"

समदृष्टि (एकता भाव)

1941 की बात है, आपके जन्म स्थान से कुछ दूरी पर मटोर नामक गाँव में एक विशाल सत्संग हुआ, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब मज़हबों के लोग शामिल हुए। उधर उस इलाका में यह रिवाज था कि हिन्दू, मुसलमानों के साथ मिलकर नहीं खाते थे। दोनों अलग अलग बैठकर खाते थे। जब सत्संग समाप्त हो गया, तो प्रेमी प्रशाद बांटने में संकोच करने लगे क्योंकि मुसलमान भी बीच में बैठे थे। बाँटने वाले एक दूसरे की तरफ देख रहे थे। मगर सत्पुरुष के दरबार में भिन्नता कहाँ? आपने प्रेमियों की अन्तर भावना को भाँप लिया। फरमायाः–

"एक दूसरे के मुँह की तरफ क्या देखते हो? प्रशाद क्यों नहीं बाँटते हो? अगर किसी प्रेमी को एतराज होवे तो वह प्रशाद न लेवे। फकीरों की निगाह में सब लोग यक्साँ (बराबर) हैं। और तोहमात को छोड़कर

पवित्र जीवन की तरफ आओ। पवित्र जीवन तब ही होगा जब दूसरों की सेवा करने वाले बनोगे। अपने सुख को हासिल न करो बल्कि दूसरे को सुख देने का यत्न करो। जितने भी ईश्वर के प्यारे संसार में प्रकट हुए हैं सबका मिशन एक ही था। वह प्रभु प्रेम में लीन रहे। उनके अनुयाइयों ने कई मत बनाए। विचार करो कि दूसरों के साथ नफरत करना कितनी ज़हालत है।'' आपके वचन सुनकर हिन्दू लोग अपनी भूल को समझ गये। उसके लिए उन्होंने गुरुदेव जी से क्षमा माँगी और प्रशाद बाँटा गया। सबने इकट्ठे मिलकर बैठकर खाया।

आदर्श सादगी और मर्यादा

1947 में पाकिस्तान बनने के पश्चात् कुछ दिनों के लिए आप जम्मू पधारे। उन दिनों काश्मीर रियासत का राजा हरी सिंह बड़ा घबराया हुआ था। महाराजा के मन्त्री ठाकुर जफरसिंह को आपके आने का पता चला तो वह चरणों में हाजिर हो गया और आपसे चलकर महाराजा को हौसला देने की प्रार्थना की। पहले तो आप न माने परन्तु प्रेमियों के बार-बार ज़ोर देने पर आपने जाना स्वीकार तो कर लिया मगर कुछ शर्तें लगाई गईं। वह निम्न हैं।

1. राजगृह का कोई पदार्थ भी नहीं खाया जाएगा। यहाँ तक कि वह पानी भी नहीं पियेंगे।
2. जिस कमरे में वार्तालाप हो, उस कमरे में सिवाय सफेद चादर के दूसरा कोई कालीन वगैरह का आसन न हो।
3. नीचे जमीन पर ही सबको बैठना होगा।
4. कोई आगे या पीछे भेंट वगैरह रखने की कोशिश उस वक्त न की जावे।

नोट : गुरुदेव की सलाह से ही राजा ने काश्मीर रियासत के विलय का एलान भारत के साथ कर दिया और रियासत हाथ से जाने से बच गई।

जिस दिन आपने महाराजा के पास जाना था उस दिन आपके सेवक भक्त बनारसीदास ने प्रार्थना की, ''महाराज जी, कपड़े बदल लीजिए।''

गुरुदेवः बेईमान! इन वस्त्रों से क्या होगा।

भक्तजीः महाराज जी! राजा के यहाँ जाना है, वे कहेंगे इनके कपड़े साफ करने वाला कोई नहीं है।

गुरुदेवः (मुस्कराकर) प्रेमी! फकीर लोग तो गुदड़ियों में जाया करते हैं। यह तो अभी बड़े साफ हैं। प्रेमी, साफ कपड़े तो उसको हौसला नहीं देंगे। फकीरों के वचन ही ढाढस देने वाले हुआ करते हैं।

वास्तव में बात ऐसे थी कि आप महीने में दो बार ही वस्त्र बदला करते थे और इस मर्यादा के अन्तर्गत कपड़े बदलने में अभी एक दिन बाकी था। इस कारण आपने कपड़े बदलना स्वीकार न करके जीवन में मर्यादा का आदर्श हम संसारियों के सामने रखा। गुरुदेव अपने असूल के पक्के थे।

मर्यादा और शिष्टाचार का पालन

गुरुदेव रावलपिन्डी में प्रेमी भाई श्री नन्दलाल जी के गृह में सत्संग कर रहे थे। उसी दौरान उनके बड़े भाई पं० किशन चन्द जी पधारे। गुरुदेव एकदम अपने आसन से उठे और बड़े भाई के चरण छुए। उस समय पं० किशन चन्द जी ने महाराज जी से कहा, ''अब आप महान संत हो गये हो, हमारे चरण न छुआ करो।'' इस पर गुरुदेव ने फरमाया,'' आप पिता तुल्य भ्राता हैं। मर्यादा और शिष्टाचार का पालन यह नहीं छोड़ सकते।'' इसी प्रकार अगले दिन गुरुदेव जी के कल्लर स्कूल के हैडमास्टर साहिब पधारे। उनको देखकर महाराज जी अपने आसन से उठे और उनके चरण छूए। हैडमास्टर साहिब ने भी वही शब्द कहे जो पं० किशनचन्द ने कहे थे। इस पर गुरुदेव ने फरमाया, ''आप हमारे गुरु के समान हैं। मर्यादा और शिष्टाचार का पालन यह नहीं छोड़ सकते।''

सत्पुरुष चमत्कार दिखाने के विरुद्ध थे

एक बार का जिक्र है प्रेमी भाई श्री देवराज जी गुप्ता, प्रिंसिपल, उनके दरबार में हाजिर हुए। उस समय गुरुदेव जगाधरी आश्रम की अपनी कुटिया में विराजमान थे। श्री देवराज जी खामोश बैठे रहे। इस पर प्रेमी जी से गुरुदेव ने कहा, ''प्रेमी, क्या सोच रहे हो?''

प्रेमी भाई: महाराज जी, कुछ नहीं ।

गुरुदेव: हम बतायें तुम क्या सोच रहे हो?

आगे गुरुदेव ने फरमाया, ‘‘तुम सोच रहे हो कि गुरुदेव ने कोई चमत्कार नहीं दिखाया। कहो तो कुटिया के बाहर नदी चला दें, परन्तु वह तुमने देखी हुई है। कहो तो एक शेर खड़ा कर दें परन्तु वह भी तुमने देखा हुआ है। तुम्हें भूख सताती है इन्हें भूख नहीं सताती, तुम्हें प्यास सताती है इन्हें प्यास नहीं सताती। तुम्हें नींद सताती है इन्हें नींद नहीं सताती। क्या यह कम चमत्कार है?’’

गुरुदेव को भूख, प्यास और नींद पर पूर्ण विजय थी। इनका सारा जीवन ही चमत्कार पूर्ण था। केवल गाय का दूध 1 पाव या 1/2 लिटर के करीब बिना मीठे के प्रात: 8 बजे के करीब सेवन करते थे। पहले कई वर्ष चाय का सेवन करते रहे। जब आँतों में खुश्की हो गई तो डाक्टरों की सलाह से दूध लेने लगे। किसी श्रद्धालु शिष्य ने महाराज जी से प्रश्न किया, ‘‘इतनी सूक्ष्म खुराक पर आपका शरीर कैसे चल रहा है?’’ इस पर गुरुदेव ने फरमाया, ‘‘बिना दूध के भी यह रह सकते हैं। यह तो केवल पर्दा रखा हुआ है।’’

किसी प्रेमी ने महाराज जी से प्रश्न किया कि आपको कभी पानी पीते नहीं देखा। इस पर गुरुदेव ने फरमाया, ‘‘जो दूध में पानी मिल जाता है वह ही इनके लिए काफी है।’’ बाकी सत्पुरुष वर्ष में तीन या चार बार चन्द घूँट पानी लिया करते थे।

नींद पर भी गुरुदेव की पूर्ण विजय थी। रात्रि के ग्यारह बजे के पश्चात् जहाँ कहीं भी ठहरते थे, जंगल में एकान्त में चले जाते थे और सारी रात समाधि अवस्था में बीत जाती थी। गुरुदेव की सारी रात खुले आसमान के नीचे कटती थी।

गुरुदेव जन्म सिद्ध महापुरुष थे। तपस्या और त्याग से परिपूर्ण इनका जीवन था। ऐसे सत्पुरुष का दर्शन और मिलाप बड़े सौभाग्य की बात है।

इंसानियत ही असली मज़हब

गुरुदेव ने उस इलाके में जो अब पाकिस्तान में चला गया, बहुत भ्रमण किया। एक बार वह एन०डब्ल्यू०एफ०पी० पेशावर में आगे के इलाके में गये। वहाँ उनकी भेंट रिंदशाह दरवेश नामक व्यक्ति से हुई। यह सी०आई०डी० का व्यक्ति था तथा जो भी साधु-संत उसको दिखाई पड़ता, उसकी पूरी छानबीन करता था। कोई न कोई कमी उसको उनके अन्दर नज़र आ जाती थी। परन्तु गुरुदेव के जीवन की जब उसने छानबीन की तो वहाँ उसे कोई त्रुटि नजर नहीं आई और वह गुरुदेव के जीवन को देखकर उनका कायल हो गया। एक दिन वह गुरुदेव के दरबार में पहुँचा। दुआ सलाम करके उसने गुरुदेव से कहा, ''पीर जी, मैं आपका मुरीद हो गया हूँ आपके जीवन को देखकर। आप चौदह तबक के मालिक हैं आदि-आदि।'' मुसलमानी अंदाज़ में उसने सत्पुरुष की प्रशंसा की। फिर उसने फरमाया, ''कहो तो मैं हिन्दू बन जाऊँ।'' इस पर गुरुदेव ने फरमाया, ''न हिन्दू बन न मुसलमान बन, सही इंसान बन।''

✶✶✶✶

गुरुदेव का एक प्रवचन

अनादि काल यानि जब से सृष्टि बनी है सत्पुरुष संसार में प्रगट होते चले आ रहे हैं। जो भी पीर, वली, अवतार, सिद्ध संसार में आए, सबने अपना-अपना पवित्र अमली जीवन पेश करके खुद प्रभु स्वरूप में लवलीन होकर संसारियों को सत् विचारों से निहाल किया। बहुतों ने उनके आदर्श जीवन और सत् शिक्षा से अपना सुधार किया। इनके बाद उनके विचार लेकर कई जीव अपनी आकबत (भविष्य) ठीक करने में लगे रहते हैं। यह नहीं कि जो अवतार, गुरु, पीर, पैग़म्बर हो चुके हैं, उनके बाद कोई नहीं आयेगा। जब तक संसार कायम है, सत्पुरुष आते ही रहेंगे। भारत की मिट्टी में यह खास सिफ्त है कि मातायें लाल पैदा करती रहती हैं। बीज नाश किसी चीज़ का नहीं हो सकता। भारत में अनादि काल से हर किस्म के लोग चोटी का इल्म रखने वाले होते आए हैं। बाहर के देश तो थोड़े अर्से से ही जागे हैं। वह अपने स्वार्थ यानि इन्द्रियों के लवाजमात (भोग पदार्थ) एकत्र करने में माहिर हैं। भारत से विवेकानन्द, रामतीर्थ जैसे महापुरुष गए। उन्होंने उन लोगों को कुछ जाग्रत किया और आत्म विद्या का स्वरूप बतलाया। वैसे वे लोग इस इल्म से बिलकुल बे-बहरा (अज्ञानी) थे। मुहम्मद साहब के जमाने में कैसी हालत थी। उन्होंने अपनी सूफियाना बा-असूल ज़िन्दगी को पेश करके लोगों को असूल वाली ज़िन्दगी का रास्ता बतलाया। इस जमाने में, जिसे रोशनी का जमाना कहा जाता है, बेशक मादी (भौतिक) जाग्रति आ गई है। वह यह जान गए हैं कि रहन-सहन किस तरह अच्छे से अच्छा हो सकता है। वह ऐसा जान गए हैं कि खाओ, पियो और मौज करो, मगर इसके नतीजे से गाफ़िल हैं। वे नहीं जानते कि नुमायशी जीवन से सिवाए अशांति, बेचैनी के और कुछ हासिल नहीं हो सकता। सत्पुरुषों ने इस संसार के सुधार के वास्ते बड़े यत्न किए, मगर इसका सुधार कभी मुकम्मल तौर से नहीं हो सकता, ख्वाहे कितना जोर उन्होंने लगाया। राम-राज्य के ख्वाब लिए जा रहे हैं, मगर इस तरह नहीं आ सकता। रंगा-रंग बुद्धि वाले जीव तो हैं मगर अंहकार से शायद

ही कोई खाली हो, जिसने प्रभु आराधना से पवित्रता कर रखी हो। आज राम, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा सामने आ जायें तो कोई मानेगा ही नहीं बल्कि कह देंगे, कोई पाखंडी आ गए हैं। सत् यानि सच्चाई को स्थापित करने के वास्ते बड़ी कुर्बानी की जरूरत है। इसके लिए बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। दुनियादारों ने आसानी से किसी के आगे सर ख़म (समर्पण) नहीं किया। जब तक ठोक बजाकर न देख लेंगे, उनके नज़दीक नहीं जायेंगे। महापुरुष किसी स्वार्थ के लिए संसार में नहीं बिचरते बल्कि वह जगह ब जगह संसार में इस वास्ते बिचरते हैं कि कोई उनसे सत् विचारों को लेकर अपनी ज़िन्दगी मनव्वर (रोशन) करने वाला हो। संसार के जीव मोह माया में फंसकर बड़े दुखी होते हैं। ज्यों-ज्यों जीव दुनिया के भोगों को सुख रूप जानकर इनको ज्यादा से ज्यादा एकत्र करने के यत्न करते हैं, त्यों-त्यों ही उनका दुख बढ़ता जाता है और बेचैनी व फिक्र से खुलासी (मुक्ति) पाने के लिए सत्पुरुषों की तलाश करते हैं। यह बेचैनी ऐसे सत्पुरुषों से दूर हो सकती है जो निर्भय अवस्था को प्राप्त हो चुके हों। सन्तोष और परम तृप्ति में मगन रहते हों। उनके पास जाकर बैठने और सत् वचन श्रवण करने से इस मन को ढाढस मिलती है। जहां से इन्हें यानि बेचैन और अतृप्त जीवों को ठंडक मिलती रहे, यह उनके नजदीक बैठने का यत्न करते हैं और चाहते हैं कि ऐसा महात्मा मिल जाए जिसके उपदेश और कृपा दृष्टि से उनके दुख दूर हो जायें। श्रद्धा सत् विश्वास से जब अच्छे पुरुषों के पास जाओगे, उनसे अच्छी मत लोगे तो उनकी शिक्षा धारण करने से लोक-परलोक सुधर सकते हैं। संतों के पास कोई खज़ाना तो होता नहीं। जीव इसलिए उनके पास दौड़ते जाते हैं कि उनके मन की तपिश दूर हो जाए। अनेकों महापुरुष इस धरती पर आए और आते रहेंगे। सत्बुद्धि वाले जीव उनसे कुछ हासिल कर सकते हैं। रजोगुणी, तमोगुणी वृत्ति के लोग सोचते ही रहते हैं। अगर अपनी ज़िन्दगी को नमूना बनाना चाहते हो तो सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग, सिमरन, जो परम गुण, असूल हैं, उनको धारण करो। उनको धारण करने वाला मानुष से देवता बन सकता है बल्कि सत्पुरुष बन सकता है। आहार, ब्यौहार और संगत की पवित्रता ज़रूरी है। मन

की शुद्धि के वास्ते असूल बनाए गए हैं। हर जगह हर समय जीव इन्हें अपना सकता है। किसी शारीरिक भेषधारी धन्धे में नहीं डाला जाता। हर मुल्क में रिवाज़, रहन-सहन अलग-अलग तरीके के हैं। संतों, साधुओं के भेष भी हजारों तरह के हैं। जाहरी भेष धर्म का स्वरूप नहीं हो सकता। न ही सच्चाई से कोई मुनकर (विरुद्ध) हो सकता है। सच्चाई को बढ़ाने वाले यह असूल हैं जो ब्यान किए गए हैं। जो भी इनको धारण करेगा अपनी शुद्धि आप ही करेगा। किसी के आधार की जरूरत नहीं, केवल ईश्वर को कर्त्ता हर्ता जानकर नित उसके भाने (आज्ञा) में रहना ही पवित्र ज़िन्दगी है। गुरु-पीरों का आधार इसलिए लिया जाता है कि सच्चाई के मार्ग में जीव बढ़ता जाये। जितने भी कुरबानी वाले सत्पुरुष हो गुजरे हैं सबको पूज्य जानकर उनके सत् उपदेशों को मानने वाले बनो। पाखंड से बचो। सत्विचारों को नित धारण करो। जिस जगह से अच्छी शिक्षा मिले, ज़रूर लो। अपने मुहाफिज (रक्षक) आप बनो। ईश्वर सबको सुमति देवें। संसार में आने का परम लाभ यह ही है कि अपनी कल्याण की जावे। दूसरों के वास्ते सुखदाई बनो।

✶✶✶✶

सदाचारी जीवन और ईश्वर भक्ति को धारण करने का अनुरोध

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर सत् श्रद्धा देवे। इन बातों को हर वक्त याद रखना चाहिए।

(1) दुनियां में सदाकत (सच्चाई) पसन्द बहुत थोड़े होते हैं। आम जनता माया की गिरफ्तारी, झूठ, अन्धकार को पसन्द करती है।

(2) सदाकत (सच्चाई) पसन्द लोग अपने रास्ते को साफ करते हैं। उनको दूसरे लोगों से मतलब नहीं।

(3) जिस वक्त मुस्तकिल (पक्का) होकर सच्चाई के मैदान में जो कोशिश करता है, उस वक्त दूसरी जनता खुद उसके पीछे चलती है। किसी को सुधारने की ख़ातिर अपना खुद सुधार किया जावे तब बेहतरी हो सकती है। तुम तमाम प्रेमियों को समता के असूल अपनाने की कोशिश करनी चाहिये, जिससे तुम्हारी ज़िन्दगी बहुत आला (श्रेष्ठ) बन जावे और दूसरे लोगों को भी सुख मिले। प्रेमी जी, सत्संग का प्रोग्राम दृढ़ रखें। ईश्वर खुद बखुद तरक्की देवेंगे। सच्चाई के रास्ते में चलने में बेशक तकलीफ़ तो बहुत होती है, मगर उसका समर (फल) परम सुख के देने वाला है। इस दुनियां में बगैर सत्मार्ग के चलने के कभी भी असली खुशी को हासिल नहीं कर सकता। हर वक्त दूसरे की भलाई करनी चाहिए और अपने सच्चे धर्म समता में हर वक्त कुर्बान होने की कोशिश करो। इस वक्त धर्म की जो जाहिरी (बाहरी) हालत देखते हो, वह असली धर्म से बहुत पीछे है। यानी खुदगर्ज़ उपदेशकों ने असली तालीम को अलोप कर दिया है। खुद भी अन्धकार में अत्याचार करने लगे और जनता के लिए भी पापकर्म का रास्ता खुला कर दिया है। ऐसे नाजुक ज़माने में बहुत सी कुर्बानी से जागृति होवेगी। तुम सच्चे धर्मपुत्र होकर ज़रूरी सेवा का सबूत देवें। प्रेमी जी, जिस इन्सान के अन्दर असली धर्म का विश्वास नहीं और अपने देश की सेवा का भाव नहीं,

वो इन्सान मत जानें बल्कि हैवान है। अपनी खुदी (स्वार्थ) में ग़ल्तान (लीन) है। हर वक्त कोशिश करनी चाहिए नेक कर्मों की। सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् सिमरन, इन नियमों को हर वक्त अपनाते रहें, आत्म विश्वासी बनें, अपनी ज़िन्दगी में देश भक्ति हासिल करें। ये चाम का शरीर आखिर अकारथ ही जावेगा। प्रेमी जी, नित ही असली ज़िन्दगी को हासिल करो। अपनी आदत को काबू करके पर उपकारी बनाओ। समता की रोशनी को फैलाओ, जिससे लोगों को शांति मिले। ईश्वर विश्वास, देश सेवा, सदाचारी जीवन और ईश्वर भक्ति को हर वक्त धारण करते रहें। इन्हीं सत्नियमों से मन शुद्ध होकर आत्म परायण हो जाता है। और इस संसार से असली खुशी लेकर जाता है। तमाम जनता को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। ईश्वर सबको सत्बुद्धि देवे और समता का जीवन बख्शे।

✶✶✶✶

गुरुदेव की अपने शिष्यों से अपेक्षा

आशीर्वाद पहुंचे। पत्र मिला। ईश्वर समता बुद्धि देवें। तमाम संगत को एक-एक करके आशीर्वाद कहनी। प्रेमी जी, समता की रोशनी को फैलाना तुम सब गुरुमुखों का परम धर्म है। और हर वक्त हमको अपने हृदय में समझें। यह हर वक्त याद रखें कि तुम प्रेमियों का जीवन अपने देश और धर्म के लिए अति सुगन्धित होवे। उम्मीद है कि तुम होनहार बच्चे ज़रूरी अपनी सादत-मन्दी (कर्त्तव्य परायणता) का सबूत देवेंगे। ईश्वर आज्ञा से हम भी तुम्हारे जैसे सच्चाई के मुतलाशियों (जिज्ञासुओं) की ख़ातिर घर-घर फिर रहे हैं। प्रेमी जी, जो कुछ हिदायत तुमको मिली है उस पर हर वक्त कारबन्द (कायम) रहें। यह संसार एक बड़ा अंधकार है, इस वास्ते हर वक्त सत् असूल को धारण करते रहें। कुर्बानी से ज़िन्दगी मिलती है। तुम्हारी ज़िन्दगी बहुत ही कुर्बानी वाली चाहते हैं। इस वक्त ईर्ष्या द्वेष की आग प्रचण्ड हो रही है, इसको बुझाने के लिए समता की रोशनी तलूह (प्रकट) हुई है। तुम गुरुमुख इस रोशनी की किरणें बनकर अपने जीवन और देश को ज़रूरी प्रकाश करें। हिन्दू कौम की बिखरी हुई हालत को तुमने टांका लगाना है, इस वास्ते इस महाकार्य का बोझ तुम्हारे सिर है। हर घड़ी हर लम्हा अपनी इखलाकी (व्यवहारिक) ज़िन्दगी का सुधार, अपनी आत्मिक उन्नति रोज़ाना अभ्यास करके प्राप्त करें।

सत्संग एक महाकारज है इसको हर वक्त हर एक प्रेमी तन, मन, धन करके धारण करे। सत्संग एक जीवन है। राज स्वराज की बुनियाद यह सत्संग ही है। हर वक्त तुम्हारे अन्दर यह तड़प होनी चाहिए कि हमारे जीवन से लोगों को सुख मिले। यह ईश्वर का हुक्म है कि जो जीव परसुख और परहित का विचार करता है वह ही परम आनन्द को प्राप्त होता है। इस वास्ते हर वक्त कोशिश करो समता के मेहराज को हासिल करने की। समता ही आखिरी मुकाम है जहां यह जीव अपनी अनानियत (कर्त्तापन) से मुखलसी (मुक्ति) पाकर अपने निज स्वरूप में लीन हो जाता है। हर एक सोसाइटी को समता की तबलीग़ (प्रचार)

करें और आपस की कशमकश ज़ाहलाना (निरर्थक वाद-विवाद) से मुखलसी हासिल करें। प्रेमीजियो, तुम्हारी नेक सीरत (शुभ गुण) हर वक्त चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर पर उपकार और देश सेवा की तड़प चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर दुखियों के दुःख का अहसास चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर एकता सत्संग चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर अपने सच्चे प्राचीन बुज़ुर्गों का आदर्श चाहते हैं। तुम्हारे अन्दर समता के लामहदूद (असीम) दायरे की रोशनी चाहते हैं। तुम्हारे अंदर गुरुभक्ति और ईश्वर परायण जीवन चाहते हैं। तुम क्या प्रेमी, सच्चे अधिकारी इस हमारी प्यास को पूर्ण करोगे? अगर तुमने अपना सच्चा रिफारमर माना है तो ज़रूरी अपनी कुरबानी का सबूत देवेंगे। ईश्वर तुमको सामर्थ देवेंगे। ईश्वर सबको सत्संग प्रीति बख्शें। गाह बगाह (कभी-कभी) सत्संग की कारवाई लिखते रहना। ईश्वर तुमको सत् सेवा का भाव बख्शें। और हर वक्त हमको अपने हृदय में समझें। जो उपदेश तुमने ग्रहण किया है उसको हर वक्त दृढ़ करें। इस दुनियां में बड़े आला मेहराज (श्रेष्ठ मंज़िल) को प्राप्त करोगे। अपने गुरु भाइयों से और तमाम जनता से अधिक से अधिक प्रेम बढ़ायें। सब प्रेमियों को आपस में मिलकर सेवा करनी चाहिए। यह तुम्हारी अव्वल ड्यूटी है। ईश्वर उस पर खुश होता है जो ईश्वर के नियम पालन करने वाला है। तुम हर वक्त उस महाप्रभु के विश्वासी बने रहो। दुनियां में शान्ति को पाओगे। हमको दूर मत समझें बल्कि अपने हृदय में (समझें)। पत्रका द्वारा आशीर्वाद हासिल करते रहा करो। सत्संग में दृढ़ता रखनी। ईश्वर सत् श्रद्धा देवें।

****

चेतावनी

जब तक तू अपने कल्याण के लिए स्वयं सोचेगा, समझेगा, मानेगा और उसी के माफ़िक (अनुसार) चलेगा नहीं, तब तक साक्षात् ब्रह्मा भी अगर आ जायें तो तेरा कुछ भी नहीं बना सकते।

ये शरीर अपूर्ण है, इसके भोग अपूर्ण हैं, यह संसार अपूर्ण है, इस अपूर्ण शरीर और अपूर्ण संसार में पूर्णताई की तलाश करना मूर्खता है। यह बात तू आज समझ ले, दस साल बाद समझ लेना या चार जन्म बाद समझ लेना, आख़िर यह ही समझना पड़ेगा। क्यों अपने सफर को लम्बा करता है। उठ जाग और अपने कल्याण के मार्ग पर बढ़ चल।

– सत्गुरुदेव मंगतराम जी

धर्म का यथार्थ स्वरूप
और
प्रचलित धारणायें

सत्य एक है, भिन्न-भिन्न मत मतान्तरों के प्रवर्त्तकों, अवतारों और सत्पुरुषों ने उसी सत्य को कई भिन्न नामों/शब्दों से पुकारा है, और उसी सत् को अनुभव करने के लिये जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया है। लेकिन हर सुधारक सत्पुरुष ने सत् की ठीक व्याख्या के अतिरिक्त अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और उस समय की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने के लिये नाना प्रकार की युक्तियाँ बतलाई हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता है असली जीवन से हीन और स्वार्थी लोगों के हाथों सत् सिद्धान्त भी विकृत हो जाता है। जीवन के बाहरी या दिखावटी ढंग के आधार पर पक्षपात आ जाता है और सामाजिक ढाँचा कमज़ोर हो जाता है। स्वार्थ-सिद्धि और अमली जीवन न होने के कारण सत् शिक्षा को गलत रूप दे दिया जाता है। धर्म तथा सत्पुरुषों की आड़ में राक्षस प्रवृत्ति के लोग भोली-भाली जनता को धोखा देते हैं, और अपनी नीच वासनाओं को पूर्ण करने के लिये जनता का शोषण करते हैं। इससे बहुत अनर्थ, गिरावट और उपद्रव पैदा होता है और संसार को अति क्लेश मिलता है। जब-जब इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, और जनता को कोई रास्ता इससे बचने का दिखलाई नहीं देता, तब-तब सत्पुरुष इस संसार में आकर जनता को सन्मार्ग दिखलाते हैं।

आम सन्तों में और सुधारक सन्तों में यह भिन्नता सदा से देखी गई है कि आम सन्त तो अपने कल्याण हेतु ही उद्योग करके वह अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, और उसी में सदैव लीन रहकर प्रारब्धवश शरीर छूटने के उपरान्त उस ब्रह्म तत्व में विलीन हो जाते हैं, परन्तु सुधारक सन्त एक

दूसरा मिशन, ध्येय एवं सिद्धान्त लेकर इस संसार में आते हैं। वे अपने आपको उस परम अवस्था में स्थिर किए हुए दुःखी जीवों के कल्याण हेतु पाखण्ड खण्डन की भावना को लेकर इस मानव जगत में प्रवेश करते हैं। पूज्य श्री सद्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज भी इन्हीं सुधारक सन्तों की परम्परा में से एक हैं। आपने भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर जैसी-जैसी जीवों की स्थिति देखी उसके अनुकूल ही मानव जीवन की हर बात ध्यान में रखते हुए अपने मुखारबिन्द से अनमोल वचन उच्चारण किये और सत् उपदेश दिये। इन सत् उपदेशों से कुछ अनमोल वचन, वर्तमान गहरे अज्ञान, अन्धकार और संशय को दूर करने वाले और एक ईश्वर विश्वास को दृढ़ करने वाले, दिये जाते हैं। इनको अपनाने से मनुष्य अपने तथा समाज, देश और मानव मात्र का कल्याण कर सकता है।

एक आतम का होवे विश्वासी, चित्त पर सेवा नित धारी।
पोथी पाषाण मढ़ी नहीं पूजे, सो समता ज्ञान विचारी।।

✶✶✶✶

तीर्थयात्रा का सिद्धान्त

तीर्थ वह जगह होती है जिस जगह कोई ईश्वर का प्यारा पैदा हुआ हो, या रिहायश की हो, या प्राणों का त्याग किया हो, या जिस जगह धर्मयुद्ध या धर्म की मर्यादा स्थापित की हो, या ईश्वर का तप किया हो।

जो चीज़ देह व मन को ठंडक देने वाली है वह तीर्थ ही समझें मसलन (जैसे) सत्संग, सत्‌विचार, सत्‌सेवा, सत्‌स्मरण, गुरु उपदेश, तपोभूमि का स्थान और विद्या के निध्यास की जगह वगैरह तीर्थ रूप जानने चाहियें।

मूल तीर्थ ईश्वर विश्वास है जो आवागमन रूपी घोर जाल से छुड़ाता है। अपनी बुद्धि को सत्‌विचार करके निर्मल करें तो तुमको ज़र्रा-ज़र्रा तीर्थ रूप दिखाई देगा। ईश्वर विश्वास को धारण करें। सत्कर्म और लोक सेवा का साधन करें, तमाम दुनियाँ के तीर्थ तुम्हारे चरणों को नमस्कार करेंगे। तू ही श्रेष्ठ आचार को धारण करके अखंड तीर्थ रूप हो जायेगा।

माँ, बाप, बुजुर्गों तथा हमसाया (पड़ोसी) की प्रेम करके सेवा करनी बड़ी तीर्थ यात्रा है।

✶✶✶✶

मूर्ति पूजा का सिद्धान्त

भक्ति मार्ग में बुत–परस्ती यानी मूर्ति की पूजा सिर्फ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके सरूप से लिया जावे।

आदर्श के बग़ैर जो मूर्ति पूजा है वह सख़्त जहालत (अज्ञानता) है। यानी आगे ही जीव जड़–प्रकृति की कैद में है, बाकी उपासना भी अगर जड़ सरूप की करनी शुरू की तो सब पुरुषार्थ दुःखदाई हो गया। यानि अन्धकार दर अन्धकार बढ़ता गया।

सत्पुरुषों का ज्ञान स्वरूप पूजने योग्य है, न कि महज़ (केवल) स्थूल आकार। स्थूल आकार की परस्तिश (पूजा) मुक्ति नहीं दे सकती, जब तक कि सही आदर्श को धारण न किया जाये।

जिस तरीके से उन महाशक्तियों ने निज़ात हासिल की है यानी स्थूल विकार पर काबू पाया है उस तरीका को धारण करना, यह उनकी सही पूजा है और कल्याण के देने वाली है।

मूर्ति पूजा वह ही सुखदाई है जिससे उस मूर्ति का आदर्श धारण करके उन जैसा पुरुषार्थ प्राप्त करें। इसके बग़ैर जो कामना रखकर बहुरंग की पूजा करता है वह बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता है, यानि कभी भी सच्ची खुशी को प्राप्त नहीं होता है।

✶✶✶✶

देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त

पूजा के माने यह हैं कि किसी की प्रभुता की आराधना करना।

अनेक तरीका की भावना रखकर अनेक देवी देवताओं, ग्रहों की पूजा करनी सख़्त जहालत और विकार के देने वाली है।

प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदलने वाली नहीं है। इस वास्ते कर्मों के अनुसार दुःख-सुख ज़रूरी मिलता है। कोई रखया (रक्षा) नहीं कर सकता। इस वास्ते ईश्वर शक्ति का भरोसा छोड़कर इन वहमों का भरोसा रखना कभी भी सुखदाई नहीं हो सकता है।

देवी-देवताओं की पूजा उनके गुण और कर्म को ग्रहण करना है, कि जिस शक्ति को धारण करके वह देवी और देवता बने, उस शक्ति का विचार करना उनके आदर्श करके, ऐसी पूजा धर्म को प्रगट करती है। जैसे-जैसे सत्कर्म और उपकार को उन हस्तियों ने धारण किया है, उसी के मुताबिक अपना जीवन बनाना, यह उनकी सच्ची पूजा है। कर्मगति ही देवता बनाती है, कर्मगति ही राक्षस बनाती है। इस वास्ते कर्मों का सुधार ही असली पूजा है। देवी-देवताओं का मार्ग यह ही है।

मौत, जन्म, दुःख और सुख सब कर्मों का फल है। कोई ताकत इनसे छुड़ा नहीं सकती। ज़रूरी भोग भोगना पड़ता है। गुरु, पीर, अवतार, ज्ञानी, नबी और पैग़म्बर सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यह ईश्वर की माया का खेल है। इन सब बातों का विचार करके अपनी करनी को सुधारना चाहिये जो सब तकलीफों से छुड़ाने वाली है।

हर घड़ी दुःख में या सुख में ईश्वर की पूजा और उसकी आज्ञा पालन करनी चाहिए। ईश्वर की भक्ति से सब देवी देवता आधीन हो जाते हैं। इस वास्ते परम शक्ति नारायण शब्द स्वरूप सर्वव्यापक का स्मरण,

ध्यान, कीर्तन, उपासना, विचार करना चाहिए। उसी के निमित्त दान करना चाहिए, यह ही असली पूजा है और कल्याण का मार्ग है।

मनुष्य के वास्ते ईश्वर पूजा और लोक सेवा असली धर्म का मार्ग है। इसके अलावा जो देवी देवताओं पर बलियाँ चढ़ाते हैं वह मार्ग से पतित होकर कई जन्म अधर्म जूनियों को प्राप्त होकर दु:ख पाते हैं।

✶✶✶✶

दान का सिद्धान्त

जो फर्ज़ करके दान नहीं करता गर्ज़ को मद्देनज़र (ध्यान) रखकर दान करता है वह निषिद्ध दान है। गर्ज़ वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती ख्वाहे (चाहे) कितनी ही कोशिश करे। फर्ज़ को जानकर जो सेवा करता है वह आत्म–उन्नति को प्राप्त होता है। धन, मन और तन की यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों जंजीरों से छूटने की खातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लागर्ज़ (निःस्वार्थ) भाव को मद्देनजर रखकर त्याग करता है वह इन कैदों से छूट जाता है। जो गर्ज़ (स्वार्थ) रखकर त्याग करता है वह बार–बार इन जंजीरों में कैद होता है।

सार निर्णय यह है तन, धन और मन को जो निष्काम भाव से दूसरे के निमित्त सर्फ (त्याग) करता है वह ही परम दानी है और परम भक्त है। ऐसे निष्काम भाव और परोपकार का साधन करते करते कर्म चक्कर से छूटकर नेहकर्म स्वरूप में लीन हो जाता है। फिर सब वासना खत्म हो जाती है, पूर्ण ब्रह्मरूप हो जाता है। दान रूपी त्याग मार्ग को समझकर हर घड़ी हर लमह इसके परायण होना चाहिए और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिए, यह समता मार्ग का निर्णय है।

निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसवंध (दस प्रतिशत) धर्म मार्ग में खर्च करना जरूरी है। अगर ज्यादा बचत होवे तो पाँचवा हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिए। यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से धारण न की जावे तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता। और समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है, यानी अनाथ, अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता में और दीगर (अन्य) जो असूल दान के हैं, उनके अनुकूल अपनी कमाई को बरताना हर प्रकार के कल्याण को देने वाला है।

दसवंध का अपने खर्च में इस्तेमाल (प्रयोग) करना हानि के देने वाला है। यही सत्पुरुषों की नीति है। बल्कि ज्यादा से ज्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयायी है, उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुरबानी के ज़ज़बात धारण करने चाहिए। इसी से धर्म की जागृति और देश में शान्ति प्रकाश करती है।

****

आध्यात्मिक उन्नति के मुख्य साधन

इस दुनियाँ में यह जीव शान्ति की खातिर आया है और हर वक्त शान्ति की तलाश कर रहा है। मगर अज्ञानवश होकर, अपनी इन्द्रियों का गुलाम होकर बजाये शान्ति के अति ही संकट को प्राप्त होता है। इस तरह हर एक मानुष मात्र, पशु आदि इस गिरफ्तारी (पकड़) में बेज़ार (निराश) और बेकरार (अधीर, अशान्त) हैं और अपनी झूठी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर रात-दिन लगे रहते हैं। आख़िर फिर दुनियाँ से रंज (निराशा) ही लेकर जाते हैं। यह खेल ईश्वर का अस्चरज है।

इस दुनियाँ के अस्चरज खेल को देखकर बड़े-बड़े दाने-बीने लाचार (विवश) हो रहे हैं। किसी भी वक्त शान्ति को न पा सकते हैं और न ही शान्ति का कोई मुकाम (ठिकाना) दिखाई देता है। जिस चीज़ से अधिक प्यार किया जाता है, उसकी जुदाई में वह अधिक दुःख पाता है। मगर बावजूद सब कुछ जानने के फिर भी अपनी ग़फलत (भूल) से छूट नहीं सकता और इस दुनियाँ से अशान्त होकर जाता है।

इस ही बड़े अज़ाब (दुःख) को महसूस करके बुद्धिमान पुरुषों ने असली खुशी की तलाश की। जिसको हासिल करके हमेशा के वास्ते शान्ति को प्राप्त हुए और लोगों को भी अबदी (शाश्वत) खुशी का रास्ता दिखलाया। उसी का नाम धर्म या ईमान है।

उस धर्म यानि असली खुशी का साधन बहुत से तरीकों में गुणी पुरुषों ने बयान किया है। मगर सबसे मुख्य साधन इन पाँच (सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, और सत् - सिमरण) नियमों को धारण करना आसान और जल्दी कामयाबी (सफलता) देने वाला है। जब तक इन पाँच नियमों को न धारण किया जावे, कभी भी असली शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता, ख़्वाहे बड़ी से बड़ी कोशिश क्यों न करे ।

बड़ी से बड़ी भक्ति या बन्दगी यह है कि अपनी ख़्वाहिशों पर काबू पाना। बड़ी से बड़ी नादानी और मूर्खताई है कि ख़्वाहिशों का गुलाम बनना। यह एक बड़ा अज़ाब (दुख) इस जीव को लगा हुआ है, जिससे हर वक्त किसी चीज़ के प्राप्त होने पर तथा वियोग होने पर भी मुसीबत में गिरफ्तार रहता है। इसी को आवागमन यानी भरमना कहते हैं।

जब तक अपनी कमी को पूरा न कर ले, यानि पूर्ण सन्तोष को न प्राप्त हो जावे, तब तक कर्म-जाल से रिहाई नहीं मिलती है। इस ही कैद से रिहाई पाने का नाम मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति है।

सबसे बड़ा अज़ाब जीव को यह ही है कि झूठ चीज़ को सत् मानकर उसके भोग में सुख जानता है। मगर वह चीज़ नाश हो जाती है। उस वक्त वह सुख दुःख-स्वरूप हो जाता है। इस ही सिलसिले में हर एक जीव दिन रात लगा रहता है। मगर शान्ति को प्राप्त नहीं होता। उल्टा कई नई ख्वाहिशों की गुलामी में आकर दुःख पाता है।

ख़्वाहिशों से एक दम कोई भी निज़ात (छुटकारा) हासिल नहीं कर सकता। इस वास्ते पहले ग़ैर-ज़रूरी ख्वाहिशों पर काबू पाना चाहिए। ग़ैर-ज़रूरी ख़्वाहिशें जीव को अति क्लेश देने वाली हैं। ग़ैर-ज़रूरी ख्वाहिशों पर काबू पाने से निज़ात के असबाब (छुटकारे के कारण) पैदा हो जाते हैं, यानि नेक-कर्म आदि परम-गुणों को धारण करने की कोशिश करता है। ज्यों-ज्यों नेक-कर्म करता है, त्यों-त्यों ख्वाहिश की आग कम होती जाती है और हालते-बेख्वाहिशी (इच्छा रहित स्थिति) यानि प्रेम की ज़िन्दगी प्राप्त होती है।

ग़ैर-ज़रूरी ख्वाहिशों पर काबू पाने के बड़े ज़बरदस्त नियम सिर्फ यही हैं, सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत्-सिमरण आदि। इनकी धारणा से जीव अपने आप पर काबू पाने की शक्ति पैदा कर लेता है। यह ही हालत मानुष ज़िन्दगी की सार है।

सादगी

इस साधन को धारण करने से मनुष्य बहुत ग़ैर- ज़रूरी ख़्वाहिशात (अनावश्यक कामनाओं) पर काबू पा जाता है। लिबास (पहनावा), खुराक और विचार को सादा करने का नाम सादगी है, ... लिबास सादा से प्रेम बढ़ता है, आजज़ी (नम्रता) आती है, अदब (सभ्यता) हासिल होता है और थोड़ी आमदनी से गुज़ारा हो सकता है। ज़रूरतों की ज़्यादती पाप करने की तरफ राग़ब करती है, ... बड़ी कोशिश करके सादगी के जीवन को अख़्तयार (धारण) करना चाहिए। असली खुशी का राज़ (भेद, रहस्य) इसी में है।

खुराक सादा खाने से सेहत अच्छी बनती है। बुद्धि निर्मल होती है और मन की वासना पर काबू पाने की शक्ति प्रकट होती है। जिसकी खुराक सादा नहीं वह कभी भी सच्चाई को हासिल नहीं कर सकता। माँस, शराब और मुनश्शी (नशीली) चीजों को इस्तेमाल करने से गर्व और गुस्सा ज़्यादा बढ़ जाता है। खुदगर्ज़ी में आकर बड़े से बड़े अत्याचार को धारण कर लेता है। खुराक और लिबास का असर मन पर बहुत पड़ता है, इस वास्ते इनकी सादगी निहायत ज़रूरी (अति आवश्यक) है जो कि असली खुशी देती है।

विचार की सादगी यह है कि हर एक से निष्कपट होकर विचार करना। दिल में बुग्ज़ (द्वेष) न रखना। साधारण गुफ्तगू (वार्तालाप) करनी जिसमें पखवाद (पक्षपात) न होवे। सादगी का नियम असली ज़िन्दगी की बुनियाद है। इस वास्ते अगर कोई अपने गुनाहों से मुख़्लसी (पाप-निवृत्ति) चाहे या राहते अब्दी (सत्-शान्ति) की तलाश करे तो पहले सादगी को दृढ़ विश्वास करके धारण करे।

✶✶✶✶

सत्य

'सत्' के मानी (अर्थ) यह है कि जो चीज़ हमेशा दायम-क़ायम (स्थिर) है, उसकी तलाश करने की कोशिश करनी और उसके मुताबिक (अनुसार) अपने जीवन को बनाना। हर एक बात का सही विचार करना, हर एक बात को सही अमल में लाना, अपना बोल-तोल हर पहलू में सच्चा रखना .... जो बात दिल में होवे, जुबान से कहनी, यह सत् का स्वरूप है।

'सत्' एक ईश्वर है .... बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्-विश्वासी होना चाहिए। जब तक अपनी अकल पापों की गिरफ्तारी में है, तब तक कभी भी सत् स्वरूप को अनुभव नहीं कर सकता। सत् के धारण से सील, सन्तोख (संतोष), उदारता, प्रेम और 'समता' प्राप्त होती है, जो अति ही विकारों को नाश करने वाली है। यह ही गुण मुक्ति के देने वाले हैं।

जिसने दुनिया को नापायदार (नश्वर) जाना है यक़ीन करके, और अपनी ग़फलत को छोड़ने की कोशिश हर वक़्त करता है, वह ही सत् का मुतलाशी (जिज्ञासु) है, एक दिन वह असली खुशी को हासिल कर लेवेगा। सत् का साधन कठिन है मगर असली खुशी इसी में है। सब ज़िन्दग़ी का सार साधन यही है कि मन सत्-विश्वासी और सत्-कर्मी होवे।

सत् की तलाश किसी खास मज़हब की पाबन्द नहीं है। सत् का सबक (शिक्षा) अन्दर से कुदरत (प्रकृति) दे रही है। मगर जहालत (अज्ञानता) से पता नहीं लगता।

हर वक्त अपनी ज़मीर (अन्तर आत्मा) को सच्चाई से राग़ब रखना चाहिए। किसी भी वक़्त असत् भावना न पैदा होने दे। तब सत् का असली जज़्बा मिलता है। तप, जप, पुण्य, दान और कठिन तपस्या का सार यह ही है कि मन में सत्-भावना पैदा हो जावे।

✶✶✶✶

सेवा

निष्काम सेवा मनुष्य ज़िन्दगी का मेराज़ (सर्वोच्च लक्ष्य) है। जिस तरह से पवन, पानी, धरती, सूरज और चन्द्रमा अपने फर्ज़ को जानकर हर वक्त सेवा में मसरूफ़ (व्यस्त) रहते हैं, उसी तरह से मनुष्य को भी लाज़म (अनिवार्य) है कि अपना फर्ज़ जानकर हर वक्त दूसरे की सेवा करे। तब ईश्वर के हुक्म को मानने वाला हुआ।

अपने धन को यथार्थ अधिकारी की सेवा में अर्पण करना चाहिए। अपने तन को दु:खी, दीन, अनाथ और लोक-सेवा में लगाना चाहिए। अपने मन को काबू कर के ईश्वर के चरणों में जोड़ना चाहिए।

सेवादार के अन्दर अधिक गुण प्रगट होते हैं, यानि प्रेम, एकता, निर्मानता, त्याग, वैराग्य, शील, सन्तोष आदि। निष्काम भावना से ज्यों-ज्यों अपने तन, मन और धन को पर- की सेवा में अर्पण करता है, अधिक से अधिक शान्ति को प्राप्त होता है यानि शील, सन्तोख, खिमा, विवेक, ईश्वर-विश्वास आदि परम गुण अन्त:करण में प्रकट होते हैं जो सब तापों को नाश करके अखण्ड शान्ति में मिला देते हैं। इसी साधन का नाम असली भक्ति या बन्दगी है।

जो भी खुलासी (मुक्ति) चाहे या सच्चे धर्म, ईमान का मुतलाशी (जिज्ञासु) होवे, वह सेवा-मार्ग को धारण करे। सब सुखों की सार और बुजुर्गों का जीवन सेवा ही है।

सेवा का पूर्ण स्वरूप यह है कि अपना फर्ज़ करके दुखियों का दु:ख निवारण करे, मन में कामना बिलकुल न रखे। यह विचार दृढ़ करे कि किसी का भला हो जावे तो बेहतर है। इस दुनिया से एक दिन चलना ज़रूर है। इस वास्ते ज़िन्दगी में ही इस झूठ जीवन को पर-सेवा में अर्पण कर दिया जावे तो बेहतर है। ऐसे निर्मल विश्वास वाले पुरुष ने सेवा के असली भाव को जाना है और वह ही परमानन्द को प्राप्त होता है।

****

सत्संग

'सत्संग' यह नियम कल्याण मार्ग का सार साधन है। खल बुद्धि जीव सत्संग द्वारा परम–गति को प्राप्त हो जाता है। इस वास्ते इस नियम का दृढ़ निश्चय से पालन करना चाहिए। यानि हर वक्त सत्संग में प्रेम रखना चाहिए। सत्संग ही मुक्ति की नौका है। सत्संग से ही सत्–असत् का निर्णय मिलता है। सत्संग से ही राजनीति कायम है। सत्संग से ही प्रेम और एकता प्राप्त होती है। सत्संग से ही बुरे–भले का विचार हो सकता है। सत्संग से ही परम–शान्ति को प्राप्त हो सकता है। सत्संग ही असली धन है जो दुःख सुख में धीरज देता है। सत्संग के बग़ैर कभी बुद्धि निर्मल नहीं होती। जब तक देह में प्राण हैं, तब तक सत्संग में एकत्र होकर के अपने जीवन का सुधार करना चाहिए।

मन को रंग सत्संगत से ही है। जैसी संगत ऐसा भाव प्राप्त करता है। पैदायश के वक्त जीव बिल्कुल अज्ञान स्वरूप होता है। ज्यों–ज्यों दुनियाँ की संगत का मिलाप होता है, त्यों–त्यों उसके अन्दर दुनियां की जागृति होती जाती है। मन की खुराक ही संगत है। जैसी संगत का सम्मेलन हुआ वैसा ही गुण ग्रहण कर लिया। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्संग का प्रेमी बनना चाहिए। सत्संग का पहला उसूल इकट्ठा मिलकर बैठना। दूसरा, अपनी बेहतरी के ज़रिए (साधन) विचार करने। तीसरा, असली धर्म का विचार सुनना। तमाम बुजुर्गों की ज़िन्दगी के हालात से बाकफी (जानकारी) हासिल करना। चौथा, इस संसार में आने का यथार्थ लाभ विचार करना। पांचवां, हर एक विघ्न निवारण करने का भाव पहचानना और सत्–धर्म में जागृति हासिल करना। छटा, अन्ध विश्वास से निज़ात हासिल करनी और सातवां, अपनी गिरावट के कारण का विचार करना और दिखावे से मुख्लसी हासिल करनी और भी कोटां–कोट फ़ायदे हैं।

हर एक मज़हब के रहनुमा की इज्ज़त करनी और उनके शुभ–जीवन का आदर्श धारण करना और अपनी आत्मिक उन्नति करनी, यह समता का सत्संग है।

जहालत, तास्सुब (धर्मान्धिता) बादमुबाद (वाद विवाद), खुदग़र्जी, सब सत्संग में आने से खत्म हो सकते हैं।

****

सत् सिमरण

सब पापों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति सत्-सिमरण ही है। इस वास्ते हर वक्त यह निर्मल विश्वास धारण करना चाहिये। मन का स्वरूप ही स्मरण है, जिस चीज़ को सिमरता है उसी का रूप हो जाता है। चूंकि संसारी पदार्थों को सिमर-सिमर के अति दुखी और भयवान रहता है इस वास्ते सत्स्मरण की तरफ मन को लगाना चाहिए। जिससे झूठ दुःख सुख से छूट मिले और अविनाशी सुख प्राप्त हो जावे।

मन एकाग्र सत्स्मरण से ही होता है इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत्स्मरण को धारण करना चाहिए। सत्स्मरण से ही अनुभव प्रकाश होता है और ज़िन्दगी, मौत सबका पूर्ण पता लगता है। नाद स्वरूप घट घट व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का प्रकाश सत्स्मरण से प्रगट होता है। इस वास्ते दृढ़ चित्त होकर ईश्वर के नाम का स्मरण करना चाहिए।

अगर और ज्यादा जप तप नहीं हो सकता संसारी आदमियों से तो सुबह व शाम दोनों वक्त दृढ़ नियम करके ईश्वर का स्मरण करना लाज़मी है। इस ही से सब सिद्धि है। मन बड़ा बिकराल है, आहिस्ता-आहिस्ता इसको पकड़कर ईश्वर के स्मरण में लगाना चाहिए। हर एक आदमी के वास्ते लाज़मी है अपने मालिक को याद करे, ईश्वर की याद से सब भ्रमजाल का अभाव हो जाता है और अन्तःकरण विखे (अन्दर) प्रकाश प्रगट होता है।

सत्स्मरण जो मन से किया जावे वह श्रेष्ठ है, सिद्धि के देनेवाला है। जबान से जाप करने से या बलन्द आवाज़ करके जाप करने से नाम का असर उड़ जाता है। जो अन्तर चित्त करके आराधन किया जावे उसका असर मन में मौजूद रहता है और शाँति देता है। ईश्वर को मालिक जानकर जो प्रेम से स्मरण करता है वह स्मरण योग को प्राप्त होता है। जो दुनिया का दिखलावा करता है वह पाखंडी पाप से कभी भी छूट नहीं सकता।

स्मरण का तरीका दुरुस्त होना चाहिए यानी कोई माला से स्मरण करता है, कोई जबान से ऊँचा शब्द उच्चारण करके स्मरण करता है, कोई राग की सूरत में स्मरण करता है, अपनी–अपनी हालत में थोड़ी तृप्ति इनमें भी है। मगर असली मन को शान्ति इन तरीकों से नहीं मिलती है जब तक कि अंतरमुख बिल्कुल अडोल होकर स्मरण न किया जावे।

आत्मिक उन्नति, जो असली धर्म है, इन पाँच मुख्य साधनों (सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत्स्मरण) के धारण करने से प्राप्त होता है। इस वास्ते हर वक्त अपने मन को इन सत्कर्मों में लगाना चाहिए जिससे अभय पद प्राप्त होवे। सब विद्या की, सब योग की सार यह ही है कि मन सब पापों से छूटकर अपने सत्स्वरूप में लीन हो जावे। यह परम सिद्धि इन पाँच साधनों से जल्दी मिलती है और सब गुणी पुरुषों का जीवन आदर्श यह ही पाँच नियम हैं। दृढ़ निश्चय से इन नियमों को धारण करना चाहिए जिससे दुर्मति का अन्धकार नाश होवे और आत्म तत्त्व में निश्चलता मिले।

****

गुरु कौन?

गुरु शब्द का अर्थ यह है कि अन्धकार को नाश करने वाला। वास्तव में तो गुरु एक शब्द स्वरूप परमेश्वर ही है जो तमाम भ्रम अन्धकार से निर्मल है और तमाम भ्रम अन्धकार को नाश करने वाला है। अखण्ड प्रकाश घट-घट व्याप रहा है, उस परम तत्त्व को जब बुद्धि अनुभव करती है तब सब अन्धकार से पवित्र होकर प्रकाश स्वरूप में लीन हो जाती है।

संसार की विचरित हालत में संसारी नीति का ज्ञान भी जिससे प्राप्त होवे वह संसारी गुरु माना जाता है। यानी इस जीव को हर वक्त शिक्षा की ज़रूरत है, बग़ैर शिक्षा के सांसारिक तथा परमार्थिक बोध नहीं हासिल कर सकता है।

परमार्थिक गुरु वह ही हो सकता है जिसने परम तत्त्व अविनाशी परमेश्वर में स्थिति हासिल की हो और तमाम तृष्णा विकार से जो पवित्र हो चुका हो यानी हर वक्त अपने अन्तर विखे (अन्तर्गत) परम प्रकाश में जो लीन रहता हो।

सिर्फ ईश्वर प्राप्ति का रास्ता जानने वाले को गुरु नहीं कहते बल्कि ईश्वर स्वरूप में जो आनन्दित हुआ हो वह असली गुरु है। सिर्फ रास्ता जानने से मुस्तहिक (अधिकारी) नहीं हो सकता है जब तक कि वह अपनी सत् श्रद्धा और प्रेम भक्ति से अन्तर्गति में परमेश्वर में लीन न हो जावे।

असली गुरु तन मन धन की भेंट इस तरह शिष्यों से लेते हैं और उपदेश करते हैं कि अपनी ममता को त्याग करके अपने धन को सत्कर्म में लगाओ और तन से जीवों की सेवा करो और मन से परम परमेश्वर का स्मरण करो जो तुम्हारे अन्दर प्रकाश कर रहा है। हमारी गुरु भक्ति यह ही है कि तुम सत् उपदेश द्वारा अपनी कल्याण करो यानी असली गुरु शिष्यों को अपनी पूजा या सेवा नहीं सिखलाते हैं

बल्कि तमाम जनता की सेवा अपनी सेवा मानते हैं और शिष्यों को जगत सेवा का उपदेश करते हैं।

शिष्य को अपने कल्याण की ख़ातिर गुरु की ज़रूरत है और गुरु को जीव उद्धार की खातिर शिष्य अधिकार देने की ज़रूरत है। यानि हर दो को अपना–अपना फर्ज़ मजबूर कर रहा है। किसी पर कोई एहसान नहीं है। यह ईश्वर की माया का नियम है। गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य की कल्याण की खातिर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देवे और शिष्य का फर्ज़ है कि गुरु वचन में अपने आपको मिटा देवे। अगर ऐसा प्रेममयी सम्बन्ध होवे तो कल्याणकारी है। इसके उलट जो गुरु अपने दाँव में रहता है और शिष्य अपने दाँव में, ऐसे निश्चय से कभी भी कल्याण नहीं हो सकती है।

गुरु रहनी वाला, पूर्ण करनी वाला, पूर्ण सहनी वाला और दृढ़ आसन वाला होवे तो वह कल्याणकारी है यानी पूर्ण ज्ञान को पहचानने वाला होवे। और जो वचन कहे उस पर पूर्ण अमल करने वाला होवे। अन्तर बाहिर एक ही भाव वाला होवे। सुख व दुख में अचल रहने वाला होवे और बैठक जिसकी बहुत होवे। और किसी वस्तु की चित्त में कामना जिसको न होवे, वह गुरु धर्म की मर्यादा को कायम करने वाला है और जीवों को कल्याण देने वाला है।

****

गुरुवाणी समता प्रकाश ग्रंथ से

श्री समता प्रकाश दोहे सार

1 मानुष तन को पाय के, परस लियो सत ठौर ।
'मंगत' समाँ बिताय के, फिरें चौरासी घोर ।।

2 कहाँ से आया कहाँ नर जाए, कौन तेरो मुकाम ।
'मंगत' सार विचारना, मानुष जनम का काम ।।

3 कारण कर्त्ता जानके, मन की चिन्ता त्याग ।
'मंगत' देह पिण्ड जिस दिया, रहो चरण तिस लाग।।

4 मन तू साचा हो रहो, सिमर के साचा नाम ।
'मंगत' बिपता जग घनी, राम देवे बिसराम ।।

5 भूल कर ना कीजिए, कूड़ी देह का मान ।
'मंगत' एक ही पलक में, उड़ जाएं धूड़ समान ।।

6 सादा खावन सादा लावन, सादा वचन विलास ।
'मंगत' रहनी देव की, जो पाए तो पाप विनास ।।

7 आसा तृश्ना जेवड़ी, गल में लीनी धार ।
'मंगत' छूटे कह बिध, आपे करे बकार ।।

8 खल बुद्धी को धार के, हीरा जनम गँवाए ।
'मंगत' बिन हरि भगत के, अन्त सभी पछताए ।।

9 ये लाभ इस जगत में, जानयो चतर सुजान ।
‘मंगत’ मन उपकार हो, हाथों से हो दान ।।

10 जीवन है दिन चार का, उठ सत सरूप विचार ।
‘मंगत’ बिन हरि भगत के, सब ही कूड़ पसार ।।

11 प्रभ के सिमरण कारने, आया इस संसार ।
‘मंगत’ जिस प्रभ सेविया, तिस चरणी बलहार ।।

12 पाप करम जम रूप हैं, अन्त देवें दुःख भारी ।
‘मंगत’ ऐसा करम ना कीजियो, जो अन्त होवे दुखकारी ।।

13 पलक घड़ी का खेल है, यह जग जीवन सार ।
‘मंगत’ सत कमाय लो, जब लग प्राण की धार ।।

14 गुरु महिमा अपरम अपार है, साखी कथी न जाये ।
‘मंगत’ दुर्गम मारग जगत का, पल में दियो चुकाये ।।

15 सत सम्पत के कारणे, जतन करो दिन रात ।
‘मंगत’ बसेरा दो घड़ी, उठ चलना परभात ।।

16 रुच-रुच प्रेम कमायो, प्रभ के सिमरन माँहीं ।
‘मंगत’ समाँ नहीं आयेगा, जब माटी में लीन समाईं ।।

17 साची भगत प्रभ चरण की, नित उठ गुनी विचार ।
‘मंगत’ बिन हरि नाम के, दुखिया कुल संसार ।।

18 बहुरंग देह सँवारता, बहुरंग राखो मान ।
‘मंगत’ निकले प्राण जब, भयो पलक में बेनिशान ।।

19 मन मानी अपनी करी, ना गुर सीख सुहाई ।
'मंगत' सखा ना को बने, जब सिर पर बिपता आई ।।

20 धरम का रूप ना जीव कोए, ना कोई मज़हब और पंथ।
'मंगत' यतन जो मुकत का, सो धरम कर वाचें ग्रन्थ ।।

21 भागती पदारथ माँगियो, सत साहब दरबार ।
'मंगत' दुर्लभ सम्पदा, जो जीव देवे छुटकार ।।

22 जीवन में जो कुछ किया, सो ही जीव की रास ।
'मंगत' पाछे के यतन से, नहीं कटे जीव की फांस ।।

23 एक परमेश्वर ध्याय लो, दूजी तज मन आस ।
'मंगत' सब कुछ देत है, रख पूरण विश्वास ।।

24 इस सागर संसार में, सुनियो एक उपाये ।
'मंगत' जैसा संग करे, ऐसी गत को पाये ।।

25 सकली सम्पत छाड़ के, चले निमाना अन्त ।
'मंगत' भरमन ना मिटे, बिन सिमरे भगवन्त ।।

26 बिनसन हारे जगत में, उठ के लाभ विचार ।
'मंगत' सेवा साध की, और दुर्लभ नाम पियार ।।

27 साचा गुर हर रूप है, सकल जियाँ आधार ।
'मंगत' पड़यो चरन तिस, कर डण्डवत बारम्बार ।।

28 मूरख मन विचार कर, नित आनन्द सरूप ।
'मंगत' बिन हरि भगत के, सब जग बिख का रूप ।।

29 कथनी से कुछ न बने, ख्वाहे कथ-कथ थके जुग चार।
'मंगत' करनी सार है, जो करे सो उतरे पार ।।

30 ये संसार सराये, जीव मुसाफिर नीत ।
'मंगत' खोज सत शान्ती, अवध जात है बीत ।।

31 ब्रह्मा विषन महेश्वर, सब ही सन्त सरूप ।
'मंगत' गुरमुख साधू आया, धर नारायण का रूप ।।

32 समता अखण्ड शान्ति, कुल विघन दोख से न्यार ।
'मंगत' रूप नारायण का, तत्त समता विचार ।।

33 आलस निद्रा त्याग के, पर की सेव विचार ।
'मंगत' देही चाम की, इक दिन होवे छार ।।

34 देवी देव की साधना, और गुरू पीर आधार ।
'मंगत' सबका अर्थ यह, सत करनी हिये विचार ।।

35 सम्पत बहु संचत करी, पर चली राई नहीं साथ ।
'मंगत' भरम गुबार में, ले चलया खाली हाथ ।।

36 कहन कथन में चतुर बहु देखे, अन्तर सार नहीं जानी।
'मंगत' कथनी मद में डूबे, बड़े चतुर बुद्ध ज्ञानी ।।

37 भरम रूप संसार में, सतसंगत नौका जान ।
'मंगत' नित पधारिये, सुनिये निर्मल ज्ञान ।।

38 तेरा कोई संगी ना साथी, नित साजन जाये अकेला ।
'मंगत' उठ प्रभ नाम सिमर लो, ये झूठ जगत का मेला।।

39 सरब जियाँ को नित सुख देवें, अपना सुख विसारी ।
'मंगत' तिन परसाद से, मिटे जनम मरन दुःख भारी ।।

40 राजा दुखिया राना दुखिया, और दुखिया कुल संसार ।
'मंगत' सुखिया सो भया, जिस शोभा पाई करतार ।।

****

अंतिम सन्देश
(श्री सद्गुरुदेव महाराज जी)

दिनांक 30–3–1950 मुकाम ताजेवाला प्रेमी
स्वर्गीय पंडित बिहारी लाल ऋषि जी को
श्री सद्गुरुदेव जी ने कुछ हिदायत
(सत्–आज्ञाएं) लिखाईं, जबकि वह सुबह
सैर को जा रहे थे (कलेशर बंगले के
बाहर पुलिया पर बैठकर):–

इनके (श्रीसद्गुरुदेव महाराज के पार्थिव शरीर अवसान के) बाद किसी चीज पर अपनी मलकियत (स्वामित्व) न जगानी (जानें)। संसार यानि जग के सब प्राणियों को 'संगत समतावाद' जानें। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, या दीक्षा लिये हुए प्रेमियों में तमीज़ (भेद–भाव) न समझें। लिटरेचर, ग्रन्थ, वाणी (समता साहित्य) सब जग के लिए प्रकट हुई जानो ।

जायदाद यानि ज़मीन के इन्तज़ामात के वास्ते बड़ी लम्बी स्कीमें बनाना रूहानियत (आध्यात्मिक मार्ग) के उसूल के मुआफ़िक नहीं है।

'आश्रम' इस गर्ज़ से कायम हुए हैं और होंगे कि जिनमें संगत एकत्र होकर ख्यालात (विचारों) की एकता, कोशिश (आध्यात्मिक पुरुषार्थ) की एकता यानि वाहमी (पारस्परिक) मेल–मिलाप और अपनी बेहतरी व अपने कल्याण की ख़ातिर सोचे। रिटायर्ड–शुदा प्रेमी सज्जन दुनियावी कामों से फ़राग़त (अवकाश) पाकर यानि वक्त निकालकर, तप की ख़ातिर रह सकें। सत्पुरुषों के बाद चालाक शिष्य लोग बायसे–बदनामी (बदनामी का कारण) बन जाते हैं। कई तरह की ग़रजें (स्वार्थ) खड़ी कर लेते हैं।

मौजूदा वक्त (वर्तमान) में ब्रह्म–विद्या की ख़ास मांग नहीं है। समता की तालीम (समता सिद्धान्त) मुकम्मिल तौर पर (पूर्ण रूप में) तहरीर में (लिखने में) आ चुकी है और कुछ लिखने लिखाने की ज़रूरत

नहीं रही। जैसा कि ईश्वर आज्ञा हुई है। अब सिर्फ 'सेवादार-भिक्षुओं' की ज़रूरत है-जो सदाचारी, परोपकारी, पूर्ण त्यागी और समय का बलिदान करने वाले हों और हर तरफ जाकर समता के उसूलों का प्रचार करें। अपने उच्च जीवन यानि अमली ज़िन्दगी से (कर्मशील जीवन से) और जीवों पर असर-अन्दाज़ (प्रभावित करने वाले) हों, पांच मुख्य साधनों (सादगी, सत्, सेवा, सत्संग एवं सत्सिमरण) पर खुद आमिल (आचरण करने वाले) हों और दूसरों को चलावें।

प्रधानता व बड़ाई उसको ही नसीब (प्राप्त) होगी जो कि तन, मन, धन पब्लिक सेवा में अर्पण करेगा निष्काम भाव से, दिल में सोते-जागते, उठते-बैठते दूसरों का दर्द समझने वाला हो, और हर छोटे-बड़े के वास्ते दिल में प्रेम रखता हो, हत्ता के (यहां तक कि) अपने पराये की तमीज़ (भेद-भाव) ख़त्म हो जावे।

नुक्ता-चीनी (परछिद्रान्वेषण) या दूसरों की ऐबजोई (आलोचना) करने का किसी को कोई हक नहीं है। क्या तू कोई ठेकेदार दुनियां का है, अपनी ऐबजोई (आलोचना) कर। दूसरों को उनकी गलती का अहसास अपने त्याग-भाव और अपने अमली जीवन से कराओ। समता की स्टेज (प्लेटफार्म) से किसी के खिलाफ़ कुछ कहना बिल्कुल अच्छा न जानें। और प्रेमी भी ख़ास ख़्याल (विशेष ध्यान) रखें कि ऐसा कोई काम खुद न करें जिससे कि तालीम (समता-सिद्धान्त) पर धब्बा (कलंक) आवे।

भिक्षु संसारी लोगों से बुराइयों को छुड़ावें। उल्टे तरीके की रायज पूजाएं (प्रचलित पूजा-पद्धति) और गलत (दोषयुक्त) कथाओं की जगह समता-लिटरेचर (समता वाङ्गमय) पहुंचाएं। फैशन, सिनेमा, सिगरेट, तम्बाखू, माँस, मदिरा छुड़ाने लायक चीज़ें छुड़ाकर, सादा खावन-लावन (खान-पान एवं रहन-सहन) अख़्तियार (धारण) करवाकर (अपनाकर) वह बचत पब्लिक सेवा में ख़र्च होनी चाहिए। पब्लिक सेवा के प्रोग्राम संगत सोचे। मुस्तहक (अभावग्रस्त अधिकारी) की इमदाद (सहायता), तालीम (शिक्षा) पर ख़र्च, बेकारी (बेरोजगारी) हटाने में सहायता, ऐसे-ऐसे शुभ कर्म ही ईश्वर-भक्ति व गुरु-भक्ति समझें।

****

समतावाद

1 समता का असली अर्थ यह है कि हर हालत में एकरस होना, ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्ति हासिल करना।

2 समता स्वरूप असली ब्रह्म शब्द है जो कि हर हालत में पूर्ण है और सबके अन्तर व्याप रहा है।

3 समता ईश्वरी शक्ति का यथार्थ स्वरूप और गुण है। समता स्वरूप ईश्वरी सत्ता सदैव काल एकरस होकर विचरती है।

4 सत्पुरुष श्री मंगत राम जी महाराज ने समता सिद्धान्त में किसी ऐसी बात का उल्लेख नहीं किया जिसको उनके पूर्ववर्ती ऋषियों, सन्तों और सिद्धों ने न कहा हो। समतावाद हर मज़हब, पंथ, सम्प्रदाय, जाति और देश के लोगों को समान रूप से देखता है। यह बात खास तौर पर जानने योग्य है कि समतावाद कोई मज़हब, पंथ या गिरोह नहीं है बल्कि प्राचीन आध्यात्मिक विचारधारा है। हर व्यक्ति अपना परम्परागत विश्वास या मज़हब छोड़े बिना इसको अपनाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति का पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है।

5 समतावाद के अनुसार हर जीव सन्तुष्टि तथा शान्ति के लिये दिन-रात प्रयत्न कर रहा है। मन की तृप्ति ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। इसी शान्ति व सन्तोष प्राप्ति हेतु सभी जीव इन्द्रियों के भोगों में दिन-रात मोहित हो रहे हैं। नाना प्रकार का जीवन सामान और सामग्री को इकट्ठा करके मनुष्य अपने आप को भाग्यशाली मानता है। लेकिन वास्तव में सच्चाई तो यह है कि ज्यों ज्यों वह इन्द्रियों के भोगों में अधिक आसक्त होता है उसका असन्तोष और अशान्ति ज्यादा से ज्यादा उसी मात्रा में बढ़ती जाती है। यह बात हम सब अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं। इस स्थिति को देखकर समतावाद इस सिद्धान्त पर पहुँचा है

और उसका यह आखिरी फैसला है कि इन्द्रियों के भोग और भौतिक पदार्थ अपने मौलिक स्वभाव में मूलतः अत्यन्त दुःख और कष्ट का कारण हैं। असली शान्ति और सन्तुष्टि हमें बाहरी जगत से प्राप्त होने वाली नहीं है। इसके लिए हमें अन्तर्जगत में दाखिल होकर इसे प्राप्त करना है।

6 जीव के खेद और बेचैनी का कारण बाहर के जगत की भौतिक वस्तुओं की प्राप्त व अप्राप्त अवस्था नहीं बल्कि उसका अपना 'अहंकार' है। जीव में 'अह' का बीज ही एक ऐसी वस्तु है जो उसे जन्म–मरण के चक्र में घुमाता हुआ उसे हर तरह से दुखित करता है।

7 समतावाद भारत की पुरातन आध्यात्मिक परम्परा की पुष्टि करता है जिसके अनुसार 'अहम्–भाव' ही संसार और दुःख का मूलभूत कारण है। अहंकार ही सबसे बड़ी जड़ता और मूर्खता है। 'समतावाद' में अंहकार रहित होने का मतलब है कि अपने 'अहम्' को उस परम शक्ति को समर्पण कर देना और हर क्षण अपने आप को तन, मन और धन से सारी जगती को उस महा–शक्ति का स्वरूप जानकर निराभिमान होकर निष्काम भाव से सेवा में समर्पित कर देना।

8 समतावाद किसी भी तरह के गुरुडम, महंताई, पुरोहिताई व गुरु गद्दी पर विश्वास नहीं रखता।

9 समतावाद की मान्यता है कि भौतिक ज्ञान एवं बौद्धिक ज्ञान मनुष्य को चरम सत्य एवं परम शांति तक नहीं पहुंचा सकते। बुद्धि उस परम प्रकाशमई अवस्था को बोध करने में असमर्थ है। उस प्रकाशमई अवस्था को केवल अबोध और असोच होकर ही जाना जा सकता है।

10 समतावाद के अनुसार आजकल की भौतिकवादी अन्धी दौड़ एवं ज़रूरतों की अधिकता बढ़ाने वाला दृष्टिकोंण सत् समाज के लिए बहुत हानिकारक है। समतावाद मानव के मानव पर अत्याचारों को बड़ा पाप समझता है। अतः मौजूदा वर्ण–व्यवस्था और छूत–छात का भेद–भाव उसकी दृष्टि में सत् समाज के लिए बड़ा अवांछनीय है।

11 'संगत समतावाद' असली प्रेम और शान्ति प्राप्ति की संस्था है। इसकी बुनियाद सादगी, सेवा और सत् पर खड़ी है। यह हर तरह के दिखावटी व बनावटी जीवन के विरुद्ध है। समतावाद प्रेम, उदारता, सहनशीलता और मानसिक संयम पर बड़ा ज़ोर देता है और इसके लिए संस्था एक शान्तिमय आन्दोलन द्वारा जनता के उत्थान हेतु सर्वदा प्रयत्नशील है।

✳✳✳✳

प्रथम संस्करण ... 1100
वर्ष ... 2003
द्वितीय संस्करण ... 1100
वर्ष ... 2005
तृतीय संस्करण ... 1100
वर्ष ... 2008

प्रकाशक :
समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधरी–135003

प्राप्ति स्थान :
संगत समतावाद दिल्ली (रजि0)
समता योग आश्रम
अंसल पालम विहार फार्म नं०45
गाँव–सलाहपुर
हूडा गुड़गाँव सेक्टर–21 के सामने
नई दिल्ली–110061
फोन नं0: 28061518, 28061519

मुद्रक :
राजेश प्रिंटिंग प्रैस
आराम नगर, पहाड़ गंज,
नई दिल्ली–110055

भारतवर्ष में, अन्य स्थानों पर भी संगत समतावाद क
आश्रम व सत्संग शालाएँ है जिनके बारे में जानकारी व
अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी निम्नलिखि
आश्रमों से ली जा सकती हैं।

HEAD OFFICE :
SANGAT SAMTAVAD
SAMTA YOG ASHRAM
CHACHHRAULI ROAD
JAGADHARI - 135003
PH. NO. : 01732-244882

मुख्य ऑफिसः
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधारी–135003
फोन न0–01732–24488

DELHI OFFICE :
SAMTA YOG ASHRAM
ANSAL PALAM VIHAR
FARM NO. 45
VILLAGE SALAH PUR
HUDA, GURGAON
OPP. SECTOR-21
NEW DELHI-110061
PHONE NO. 28061518, 28061519

दिल्ली ऑफिसः
समता योग आश्रम
अंसल पालम विहार
फार्म नं0–45
गाँव सलाह पुर
हुडा गुडगाँव, सेक्टर–2
के सामने
नई दिल्ली–110061
फोन न0–28061518, 2806

शिक्षा पर आधारित ग्रंथ एवं पुस्तकें

क्रम सं०	नाम
1.	श्री समता प्रकाश ग्रन्थ
2.	श्री समता विलास ग्रन्थ
3.	जीवन गाथा भाग–1
4.	जीवन गाथा भाग–2
5.	मेरे गुरूदेव
6.	गुरूदेव ने कहा
7.	ऐसे थे गुरूदेव हमारे
8.	अमर वाणी
9.	ऐसी करनी कर चलो
10.	अनन्त की खोज
11.	संस्मरण (महाराज जी के जीवन के कुछ संस्मरण)
12.	समता ज्ञान दीपक
13.	समता आध्यात्मिक पत्र (हिन्दी–उर्दु) (महाराज जी द्वारा प्रेमियों को लिखे हुए कुछ पत्र)
14.	समता ज्ञान पुष्पमाला
15.	समता निति
16.	प्रकाश पुण्ज
17.	अनन्त शान्ति की ओर
18.	नामावली
19.	संक्षिप्त जीवन परिचय
20.	प्रार्थना व वैराग्य वाणी
21.	जीवन परिचय (समतावाद)